।। भक्तिवर्धिनी ।।

(केशोद प्रवचनके अंश)

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : सहयोग प्रकाशन
शैलेश एम लाखानी
५०३, शिवनिवास,आर.बी.महेता मार्ग.
घाटकोपर.मुंबई ४०००७२

सूक्तिप्रस्तुति : गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रथमसंस्करण : प्रथम संस्करण
पवित्रा एकादशी वि.सं.२०७२

प्रति : १०००

नि:शुल्कवितरणार्थ

मुद्रक : एम आर्ट्स, Shalesh Printers
१४, चुनावाला इन्डस्ट्रिअल् एस्टेट्,
कोंडिविटा, अंधेरी (पूर्व),
मुंबई : ४०० ०५९.

।। भक्तिवर्धिनी ।।

१. षोडशग्रन्थमें भक्तिवर्धिनी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है. रेलयात्रामें जैसे जंक्शन् आता है, अथवा चार रास्ते जहां मिलते हैं वहां जिस प्रकार मार्गदर्शनके लिये सूचना पट्टी लगी होती है, उसी प्रकार महाप्रभुजीने अपने पुष्टिसेवकोंको उनकी कठिनाईके समय मार्गदर्शनके लिये ये उपदेश दिये हैं.

२. षोडशग्रन्थमें यमुनाष्टकका स्थान प्रथम है. श्रीयमुनाजी प्रभुकी पुष्टिशक्ति हैं. इस कारण पुष्टिमार्गपर चलनेके लिये उनका प्रथम स्थान आवश्यक है. यमुनाष्टक और सेवाफल यह दो टर्मिनल्स् हैं. जहांसे गाड़ी प्रारम्भ होती है तथा जहां पर समाप्त होती है. बालबोध एक स्टेशन् है जिसमें महाप्रभुजीने अपने सिद्धान्तोंका वर्णन नहीं किया है परन्तु सर्वसिद्धान्तोंका संग्रह किया है. तत्पश्चात् सिद्धान्तमुक्तावली एक जंक्शन्की तरह आती है जिसमें महाप्रभुजीने अपने सिद्धान्तोंका निचोड़ रखा है. स्वसिद्धान्तविनिश्चयमें कृष्णसेवाकी प्रमुखता रखी है. पुष्टि-प्रवाह-मर्यादामें सेवाके लिये जीवोंमें योग्यता अथवा अयोग्यता का विवेचन किया है. जो योग्य जीव हैं तथा जिनको कृष्णसेवा धर्मकी तरह लगती है उनको सिद्धान्तरहस्यका उपदेश दिया है.

३. सेवा विभिन्न प्रकारसे हो सकती है. मिनिस्टर्सकी तरह जनताका पैसा खा कर! परन्तु क्या महाप्रभुजी वैसी सेवाको सेवाकी तरह स्वीकारते हैं? नहीं. अथवा तनख्वाह पानेवाले नौकर जिस प्रकार मालिककी सेवा करते हैं अथवा घरमें जिस प्रकार बैल और कुत्ते बंधे होते हैं तो वे भी सेवा ही करते हैं. तो क्या इस प्रकार पुष्टिजीवोंको पुष्टिप्रभुकी सेवा करनी है? नहीं.

४. महाप्रभुजीको तो एक चिंता यह थी कि लौकिक विषयवासनासे

भरे हुए जीवसे पुष्टिप्रभुकी अलौकिक सेवा कैसे कर सके? तत्पश्चात् प्रभुने आज्ञा दी कि ब्रह्मसम्बन्ध प्रदान करो जिससे जीव सेवाके लायक हो.

५. सेवा करनेके लिये ब्रह्मसम्बन्ध लेना होता है. जिसे सेवा न करनी हो उसे ब्रह्मसम्बन्ध लेना आवश्यक नहीं है. ब्रह्मसम्बन्ध तो समर्पणकी दीक्षा है. जीव परमात्माको समर्पित होता है और सेवाका अधिकारी बनता है और इस समर्पणके कारण जीवके दोष बाधक नहीं होते. दोष तो रहते ही हैं परन्तु प्रभु उनको मानते नहीं हैं.

६. तुम्हारा भाव तुम्हारे द्वारा व्यक्त होता है तथा समर्पण अपनी सत्ताका ही हो सकता है. किशोरीबाईकी वार्तामें दूसरेके सीधे-सामग्रीसे बनाई हुई रसोई प्रभु नहीं आरोगे. तुम अपनी सत्ताका जो कुछ भी समर्पित करो तो उसे स्वीकारनेके लिये प्रभु बंधे हुए हैं और जो अन्य कोई कुछ दे जाये उसे स्वीकारनेके लिये प्रभु बंधे हुए नहीं हैं. क्यों? क्योंकि मूलमें प्रभु सामग्रीके भूखे नहीं हैं पर भावके भूखे हैं.

७. नहीं तो प्रभु गोकुलमें प्रकट ही नहीं होते. जो ब्रह्मा-शिवकी स्तुतिका कोई जबाब भी नहीं देते वह प्रभु यहां गायोंके पीछे ही!ही! करके दौड़ते हैं. **''तस्माद् मच्छरणं गोष्ठम्''** गोकुलको अपना मानते हैं. हम जब-तक समर्पणके भावसे प्रभुके नहीं होतें तब-तक प्रभु हमको स्वीकारनेके लिये बंधे हुये नहीं हैं. इस कारण असमर्पित व्यक्तिसे सेवा नहीं होती. समर्पितका ही सेवामें विनियोग होता है. ऐसा बड़ा जंक्शन् सिद्धान्तरहस्यमें बताया गया है.

८. तत्पश्चात् सेवामें चिंता उद्वेग होता हो तो नवरत्नद्वारा और

सेवामें तत्परता नहीं होती हो तो उससे कैसे पार पाना उसे अंत:करणप्रबोधद्वारा समझाया गया है.

९. किसी कारणसे सेवा करनेकी योग्यता न हो, जैसे भूलसे शादी कर ली, बालविवाहकी तरह (बालब्रह्मसम्बन्धमें ऐसा घोटाला हो जाता है) तो दूसरा जंक्शन् आता है विवेकधैर्याश्रय तथा कृष्णाश्रय का. केवल शरणागतिका सिद्धान्त जो कि भक्तिमार्गसे पृथक् है उसे इनमें समझाया गया है. महाप्रभुजीका नाम भी 'पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा' है. जो विवेक धैर्य तथा भक्ति से रहित हो उनकी गति भी कृष्ण तो है ही अर्थात् जैसा हूं वैसा आपका हूं.

१०. सेवा करनेवालेको धर्म अर्थ काम और मोक्ष इत्यादि चार पुरुषार्थोंके साथ कैसा सम्बन्ध रखना, उसका उपदेश चतु:श्लोकीमें है. यह चारों पुरुषार्थ प्रभु सम्बन्धित ही होने चाहियें. **''पुष्टिमार्गे हरेर्दास्यं धर्मोर्थो हरिरेव हि. कामो हरेर्दिदृक्षैव मोक्ष: कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्''**.

११. महाप्रभुजीकी आज्ञा हैं कि जहां-तक देहाभिमान है वहां-तक वर्णाश्रम धर्म ही स्वधर्म है. सेवाका सिद्धान्त तुम्हारे किसी लौकिक धर्मके अंगकी पूर्तिके लिये नहीं समझाया गया है. तुम्हारा जो कुछ देहधर्म कुलधर्म अथवा सामाजिक धर्म है वह धर्म तुम्हारे देहके अभिमानके कारण अथवा कुलके अथवा समाजके अभिमानके कारण तुम्हें निभाना ही है. उन कर्तव्योंमें, ब्रह्मसम्बन्ध लेनेके कारण कोई छूट नहीं मिलती. सेवाधर्मका उपदेश कुछ अलग भावभूमिकापर दिया गया है. यह सेवा आत्मा-परमात्माके सम्बन्धके कारण, अंश-अंशी सम्बन्धके कारण निभानी है.

१२. देहकी अर्थ-कामसे सम्बन्धित जो आवश्यकतायें अथवा कर्तव्य

हैं, उनकी पूर्तिके लिये भजनको माध्यम नहीं बनाना चाहिये. प्रभुको उसे प्राप्त करनेका साधन नहीं बनाना चाहिये. सेवा करनेवालेको मेवा मिलता है, यह अपना सिद्धान्त नहीं है परन्तु सेवा करनेसे सेवा ही मिलनेका अपना सिद्धान्त है.

१३. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि **''यद् यद् इष्टतमं लोके...''** अर्थात् जो तुमको अच्छा लगता है, जगत्में जो वस्तु अच्छी मानी जाती है परन्तु उसे प्राप्त करनेमें तुम्हें कष्ट होता हो अथवा भिखारी जैसे काम करने पड़ें, तो उससे सेवा नहीं करनी. जिस वस्तुका समर्पण करनेमें तुम्हें आनन्द आता हो, किसीका एहसान न लेना पड़े, वैसा समर्पण प्रभुको करना चाहिये.

१४. इस संदर्भमें मैंने एक मंदिरमें ऐसा देखा कि मुखियाजी शयनआरती करके टी.वी. देखने बैठ जाते और भक्तोंकी राह देखते हुये ठाकुरजी खड़े रहें. मैंने पूछा ''ऐसा कैसे?'' तो मुखियाजीने बताया कि ''दर्शन देर-तक खुले रहे तो वैष्णवें अपनी सुविधासे आ सकते हैं और दर्शनका लाभ ले सकते हैं.'' मैंने फिर पूछा कि ''वैष्णवोंकी सुविधाके लिये श्रीठाकुरजीको इतनी देर-तक क्यों खड़ा रखना?'' तो मुखियाजी बोले ''ऐसा नहीं करूं तो मंदिर कैसे चलेगा?'' यह अपनी भक्तिका प्रकार नहीं है. यह तो ''भगत जगत्को ठगत है'' का प्रकार है. जब तुम समर्पित होनेके लिये तैयार नहीं, टी.वी. छोड़नेके लिये तैयार नहीं, परन्तु मंदिर चलाना है तो ऐसा महाप्रभुजीका सिद्धान्त नहीं है.

१५. तुम्हें अपने धर्म अर्थ काम और मोक्ष इत्यादि पुरुषार्थोंके लिये जो कुछ करना है करो, परन्तु उसमें प्रभुका विनियोग मत करो. अगर तुम अपने धर्म अर्थ काम को भक्तिका अंग

बना सकते हो तो महाप्रभुजी कहते हैं कि ''आओ पुष्टिप्रभु अब तुम्हारे लिये हैं''.

१६. जब तुम लौकिक कामको प्रभुभक्तिका अंग बना सकते हो तो वह लौकिक काम भक्ति बन जायेगा. सेवामें सहयोगी हो उसके लिये पत्नीकी अपेक्षा एवं **''पुत्रे कृष्णप्रिये रति:''** तो जिस प्रकार गटरका पानी गंगाजीमें मिल कर गंगाजल हो जाता है, वैसे ही वह भी भक्तिका संग पा कर भक्तिका अंग बन जायेगा. परन्तु प्रभु भक्तिको लौकिककाममें नहीं लगाना चाहिये अन्यथा गंगाजलको गटरमें मिलानेकी मूर्खता जैसी होगी.

१७. अपनी धर्म अर्थ एवं काम सम्बन्धी वृत्तियोंको भक्तिकी गंगामें मिला दोगे तो वह भक्तिका अंग बन जायेगी, लेकिन भक्तिको धर्म अर्थ और काम की गटरमें मिलाओगे तो वह गटर गंगाजलका माहात्म्य धारण नहीं कर सकती. वह तो क्षुद्र वासनाकी गटर ही रहेगी. उसमें कदापि भक्तिकी गरिमा नहीं आ सकती.

१८. चतु:श्लोकी बहुत बड़ा जंक्शन् है : **''पुष्टिमार्गे हरेर्दास्यं धर्म:''** (देहसे तुम चाहे किसीके दास हो लेकिन आत्मासे तो प्रभुके ही दास हो); **''अर्थो हरिरेव हि''** प्रभु वास्तविक निधि हैं. लक्ष्मी तो क्षुद्र एवं चंचल निधि है और ये तो अचंचल है. प्रभुको अर्थ मान कर प्रभुको ही कमाना चाहिये. प्रभुको कमानेका साधन नहीं बनाना चाहिये. **''कामो हरेर्दिदृक्षैव''** दुनियाको अपनी भक्ति दिखानेके लिये एकत्रित करनेकी कामना, सजावटको देखनेकी कामना, इतना बड़ा लड्डू!! लेकिन ठाकुरजी तो लड्डूमें ढक गये. आज तो फूलके हिंडोलाके दर्शन किये परन्तु भूले किसे? ठाकुरजीको. ऐसे विभिन्न प्रकारकी पुष्टिभक्ति हमने समझ रखी है. दूल्हा घोड़ेपरसे गिर गया परन्तु अपना नाच चालू

है. कोई कहे तो जबाब देते हैं हमारा मजा किर-किरा मत करो. हमें तो नाचने दो. कैसी विडम्बना है!!

१९. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि भगवान्‌ने वक्ष:स्थलपर कौस्तुभमणि इस कारण धारण की है कि जो मुखारविन्दके दर्शनके अधिकारी नहीं हैं उनकी दृष्टि मणिपर ही अटक जाये. सजावटोंमें प्रभु तो खो जाते हैं और हम सजावटमें अटक जाते हैं.

२०.**''मोक्ष: कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्''** जब तुम्हारेमें ऐसा भाव जागे कि तुम कृष्णके हो तो तुम्हें किसी दूसरे मोक्षकी जरूरत नहीं है.

२१. देहसे छूटकर परमात्मामें मिल जाना मोक्ष है. परन्तु उस मोक्षको महाप्रभुजी भक्तिके समर्पणभावमें उपयोगी नहीं मानतें.

२२. तुम कृष्णकी सेवा-समर्पण भावसे कर रहे हो तो वह तो परमात्मा द्वारा बरसाई गई कृपावृष्टि है. जिस समय तुम भक्तिभावसे सेवा करने लगोगे तो उसी समय वह तुम्हारा हो जायेगा.

२३. हम लोग कहते हैं कि ठाकुरजी फलानेके माथे बिराज रहे हैं. अरे, एक समय तुम अपने माथेपर पधरा कर तो देखो. फिर वह तुम्हारे हृदयमें कब पधार जायेंगे इसकी तो तुम्हें खबर ही नहीं पड़ेगी और उसी समय भक्तिवर्धिनी प्रारम्भ हो जायेगी.

२४. भक्तिवर्धिनीके पश्चात्, षोडशग्रन्थमें उपदेश भक्तिसे सम्बन्धित हैं और उससे पहलेके ग्रन्थ सेवाके अंग, सेवाके विकल्प, बाधक, मार्गका स्वरूप इत्यादिके प्रति हैं. अब इसमें प्रश्न उठता है

कि सेवा और भक्ति में अंतर क्या?

२५. सेवाका एक पहलू क्रिया है और दूसरा निगूढ़ पहलू स्नेहका है. भक्ति अर्थात् ज्ञानपूर्वक स्नेह. परन्तु वह निष्क्रिय भाव नहीं है. अतएव उस भावको व्यवहारमें न लाना, उसका अधूरापन है.

२६. सेवा तो एक क्रिया है. भक्ति एक भाव है. भावरहित क्रिया और क्रियारहित भाव, यह दोनों स्वतन्त्रतासे तो अधूरे ही हैं.

२७. हृदयमें भक्ति भरी हुई हो तो उसे बाहर प्रकट करना आवश्यक है. स्नेह है तो उसे वाणीसे प्रकट होना चाहिये अथवा व्यवहारमें आना चाहिये. भक्ति प्रत्येक पहलूसे प्रयोगमें लायी जाये तो वह सच्ची भक्ति. बहुत लोग कहते हैं कि सेवाकी क्या जरूरत है? हृदयमें तो भक्ति भरी हुई है ना! अगर कुवेमें पानी भरा हुआ हो और उसे प्रयोगमें नहीं लायें तो वह खराब हो जाता है. उसी प्रकारसे धन स्नेह बुद्धि इत्यादिको प्रयोगमें नहीं लायें तो उसमें जंक् लग जाता है.

२८. स्नेह भी वाणी विचार व्यवहार में प्रयोग आये तो वह 'स्नेह' कहलाता है. उदाहरणार्थ क्रोध आये और गाली देना चालू रखें तो वह क्रोध बढ़ता जाता है और उस क्रोधको प्रयोगमें नहीं लायें तो वह शांत पड़ जायेगा. वही प्रकार स्नेहका भी है. हम बच्चोंको प्यार करते हैं. अगर करते रहे तो यह प्यार बढ़ता जायेगा. और अगर इस प्रकार सोचें कि यह सब तो मिथ्या है, स्वप्न है, माया है और बच्चोंसे प्यार करना छोड़ दें तो थोड़े सालोंमें तुम्हारा स्नेहका तंतु ही टूट जायेगा.

२९. उसी प्रकार भक्तिभावको क्रियात्मिका सेवाद्वारा प्रयोगमें लाते रहोगे तो वह बढ़ता रहेगा. गुजरातीमें धौल है कि ''वल्लभे झाल्यो मारो हाथ मने तेनो भारी भरोसो''. इस भरोसेको प्रयोगमें लाते रहना चाहिये. नहीं तो भरोसा भी कदाचित् सरक जाये तो तुम्हें खबर ही नहीं पड़ेगी. केवल गाते ही रह जाओगे.

३०. अतएव सेवाको भक्तिमयी और भक्तिको सेवामयी बनाना चाहिये.

३१. **''चेतस्तत्प्रवणं सेवा''** चित्त कब चौंटे? जब उसमें स्नेह हो तब. नहीं तो सेवाकी क्रियामें जूते सिलवानेका भी विचार आयेगा. भक्तिकी परिभाषा हमारे यहां 'भज्' सेवायाम् है. दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं.

३२. प्रत्येक मनुष्यमें एक साधारण अहंकार होता है. यह अहंकार किसी समय निर्मम विरक्तिके साथ जुड़ा हुआ होता है तो किसी समय ममतासे भरी हुई अनुरक्तिके साथ. भक्तिमार्गकी दृष्टिसे इन दोनों अहंकारोंमें अनुरक्तिका अहंकार अच्छा है. क्योंकि दुनियांसे विरक्तजीव दूसरेके सुख-दुःखको नहीं समझ सकता.

३३. हरेककी ममताका प्रयोग अलग-अलग प्रकारका होता है. किसीका प्रयोग देह तक ही सीमित होता है. किसीका परिवार तक और किसीका ग्राम प्रांत राष्ट्र अथवा समग्र मानवजाति तक विस्तृत होता है.

३४. ममता जिसमें, जैसा-जैसा व्यवहार होता है वैसे-वैसे व्यवहारमें रहे हुए प्राणियोंके सुख-दुःखको ममताशील व्यक्ति सहानुभूतिसे समझनेका प्रयास कर सकता है वैसा विरक्त मनुष्य नहीं कर सकता. यह ममता भी कई बार स्वार्थके साथ बंधी हुई होती है. कई बार निःस्वार्थ होती है. भक्तिमार्गकी दृष्टिसे निःस्वार्थ

ममता भले ही वह लौकिक हो तो भी श्रेष्ठ है. श्रेष्ठ इस अर्थमें कि उसका किसी रीतिसे विकास हो सकता है.

३५. इसी प्रकार दीनताकी भी दो प्रकारकी वृत्ति होती हैं. जहां स्वार्थ सधता हो उसके सामने दीन बन कर काम निकालनेकी वृत्ति (धनवानोंको देख कर उनको प.भ. कहने-माननेकी वृत्ति). और जिसके साथ स्वार्थका कोई लेना-देना नहीं उसके साथ दीनताकी वृत्ति. भक्तिमार्गमें दूसरे प्रकारकी दीनताको विकसित किया जा सकता है.

३६. जिस आदमीके सामने दीन बनना पड़ता है उसकी अपने मुंहसे प्रशंसा तो करनी पड़ती है. लेकिन जिसके आगे हमें दीन नहीं बनना पड़ता परन्तु उसके प्रशंसक तो हो सकते हैं. प्रशंसाके मूल्यांकनमें दूसरी दीनता भक्तिमार्गमें महद् अंशमें सहायक होती है क्योंकि उसमें गुणग्राहक वृत्ति है.

३७. उसी प्रकार प्रीति भी कई रीतिकी होती है. बेढंग प्रीति भी होती है. इन दोनों प्रीतिके मूल्यांकनमें रीतिवाली प्रीति भक्तिमार्गके लिये उपयोगी होती है.

३८. इस रीतिके भी कई लोग जड़ाग्रही होते हैं और कुछ प्रेमाग्रही होते हैं. "हमारे बापदादा इस प्रकार ही करते थें" ऐसे जो रीतिके पंडित होते हैं वे लोग महिषावतार होते हैं. ऐसी भैंसोंके सामने चाहे जितना सिद्धान्तका भौंपू बजाओ लेकिन वह टससे मस नहीं होतीं. अपनी ही रीतिसे चलती हैं. इसमें जो रीतिके प्रेमाग्रही होते हैं, भले ही वह गलत रीति हो, ऐसे लोग भक्तिमार्गके लिये उपयोगी होते हैं.

३९. भक्तिका एक अलग ही नाज़ुक मिज़ाज है. जैसे गुलाबके फूलका

नाज़ुक मिज़ाज है. उसको पकड़नेका अंदाज़ आना चाहिये. वैसे ही भक्तिको पकड़नेका भी अंदाज़ आना चाहिये. जिससे भक्ति भी सलामत रहे और तुम्हारी शोभाकी भी अभिवृद्धि हो.

४०. इस नाज़ुक भक्तिका वर्णन एवं विचार महाप्रभुजीने 'भक्तिवर्धिनी'में किया है.

४१. तनुजा सेवा (मुखियाजी करें), वित्तजा सेवा (दर्शनार्थी करें) और नामजा सेवा गोस्वामी बालक करें (जिसमें तन भी दूसरेका, वित्त भी दूसरेका, मात्र नाम अपना) ऐसी विविध सेवाओंका विकल्प जब स्फुरायमान हो तब तुम्हें भक्तिके नाज़ुक मिज़ाजका ख्याल नहीं रहता.

४२. सिद्धान्तमुक्तावलीमें कुछ रीतिके प्रकारका वर्णन है और भक्तिवर्धिनीमें प्रीतिका.

४३. इस प्रकार प्रीति एवं रीति का पारस्परिक समन्वय 'भक्ति' कहलाता है. केवल प्रीति अथवा केवल रीति, भक्ति नहीं है.

४४. सेवाकी रीतिकी पुस्तक है. इस दिन यह शृंगार आयेगा और उस दिन वह. लेकिन प्रीतिकी कोई पुस्तक है नहीं कि इस दिन इस रीतिसे प्रीति करनी और उस दिन उस तरहसे. प्रीति होती है तो होती है और नहीं होती तो नहीं होती. प्रीतिकी रीति चाहे जितनी घोटो परन्तु उसमेंसे उसकी रीति ही आयेगी, प्रीति नहीं.

४५. पहले लोग बैठकजीमें जाते थे तब झारी भरते अथवा सूखामेवा भोग धरते थे. उसमें एक रीतिने जन्म लिया कि बैठक देखी

नहीं कि उसमें झारी भरनी. एक बहिन यात्रामें जानेसे पहले मेरे पास केवल झारी भरनी है इसलिये ब्रह्मसम्बन्ध लेने आयी. मैने कहा कि ''ब्रह्मसम्बन्ध तो नित्य कृष्णसेवाके लिये लिया जाता है, बैठकजीमें खाली झारी भरनेके लिये नहीं.'' और बैठकजीमें भी यात्राके समय कैसी भगदड़! एक झारी भरे और दूसरा उसे उठा दे. चौकीपर पानी गिराये, कोई उसके ऊपर गिरे, चौकी भी खिसक जाती है. कदाचित यात्राके समय महाप्रभुजी भी बैठकमेंसे भाग जाते होंगे!

भक्तिकी नाज़ुक साधनामें, पुष्टिके नाम लेना ऐसी नौटंकी है. लेकिन ऐसे सभी भैंसावतारोंको तो बैठकजीमें जाना ही जाना और झारी भरनी ही भरनी.

४६. प्रत्येक सचेतन प्राणीमें कुछ जानने-समझनेकी सामर्थ्य होती है. किसीमें खाली मजा लेनेकी और किसीमें कर सकनेकी. जो भी सामर्थ्य अधिक होती है उसीके ऊपर उसके मार्गका निर्धारण होता है.

४७. कर्म ज्ञान और प्रीति इन अपने अंदर रही हुई सामर्थ्योंको लोकमें प्रयोगमें लायें तो 'कर्म' 'ज्ञान' 'स्नेह' कहलाती हैं. परन्तु वे मार्ग नहीं बनते. मैं नौकरी करता हूं, व्यापार करता हूं तो वह कर्ममार्ग नहीं है. अनेक पुस्तकोंको पढ़ना वह ज्ञानमार्ग नहीं कहलाता. प्रीतिको भी घर-संसारमें जहां-तहां प्रयोगमें लायें तो वह भक्तिमार्ग नहीं बन जाता. लेकिन जब मैं अपनी इस शक्तिको परमात्माको खोजनेके लिये प्रयोग करता हूं तब वह मार्ग बन जाती है.

४८. ऐसा जरूरी नहीं है कि तीनों मार्गोंका संगम ही करना चाहिये. परमात्मा किसी भी मार्गसे बंधा हुआ नहीं है. परमात्माने तुम्हें

जो भी सामर्थ्य दी है, उसका उपयोग करके ही तुम्हें परमात्माको ढूंढना है. ऐसा होते हुये भी कोई एक सामर्थ्यको अपना मार्ग बनाता है कोई दो सामर्थ्योंको अपना मार्ग बनाता है. किसीको एक ही सामर्थ्यसे विश्वास आ जाता है, किसीको दूसरी सामर्थ्यका प्रयोग करना पड़ता है. यह तो तुम्हारी आवश्यकतासे तुम्हारा मार्ग बनेगा. परमात्माके लिये तो कोई सीमा बंधी हुई नहीं है कि तुम भक्ति करोगे तो ही मिलेगा अथवा ज्ञानसे ही मिलेगा.

४९. जिस सामर्थ्यको उपयोगमें लाओगे, उसके अनुसार परमात्मा तुम्हें मिलेगा. जैसे आंखकी सामर्थ्य उपयोगमें लाओगे तो रूप दिखाई देगा, गंध नहीं. नाककी सामर्थ्य उपयोगमें लाओगे तो गंध परख सकते हो रूपको नहीं. मेरी अपेक्षा क्या है? उसके अनुसार ही वस्तुस्थिति समझनी पड़ेगी. मुझे परमात्माका प्रकटीकरण कर्मद्वारा पसन्द है अथवा ज्ञानद्वारा अथवा भक्तिद्वारा. जो भी अभिलषित हो उसके अनुसार ही मार्गको पकड़ना चाहिये.

५०. एक बात समझ लो. तुम किसीको आंखसे देखनेका प्रयास करोगे तो कानसे बहरे नहीं हो जाते. कानसे सुनोगे ही, वह तो सुनाई देगा ही. लेकिन किसी सुंदर वस्तुको आंखसे निहारते समयकी तन्मयतामें कोई अन्य वस्तु सुनाई दे तो उसमें तो विघ्न लगेगा ही.

५१. बहुतको कर्म भक्ति क्षुद्र लगती है. ज्ञान ही प्रशंसनीय लगता है. लेकिन गीताजीमें तो प्रभुने तीनोंकी ही प्रशंसा की है.

५२. दवाकी दुकानमें तो प्रत्येक प्रकारकी दवाके ऊपर उसकी प्रशंसा छपी होती है. परन्तु तुम्हें तो अपने रोगानुसार ही चिकित्सा

एवं दवा लेनी होगी. मार्गका निर्णय तुम्हें करना है. परमात्माको तुम किस रूपमें खोज रहे हो और उस प्रकारकी खोजमें तुम्हारी तत्परता है कि नहीं?

५३. ज्ञानकी सामर्थ्यसे परमात्माको खोजोगे तो वह ज्ञेयके रूपमें प्रकट हो जायेगा. तुम्हारे प्रेमकी सामर्थ्यसे वह प्रियके रूपमें प्रकट हो जायेगा. और क्रियाकी सामर्थ्यसे खोजनेपर वह परमात्मा कर्मके रूपमें पधार जायेगा.

५४. तुम जिस सामर्थ्यसे परमात्माको बुलाना चाह रहे हो उस सामर्थ्यका परिमार्जन करना चाहिये. जैसे मेहमान आता है तो उसके लिये कमरा इत्यादि तैयार करके रखते है. उसको दूसरे प्रलोभनोंसे दूषित नहीं करो. भक्तिकी सामर्थ्यसे उसे पधराना है तो लोकार्थिता नहीं रखो. तुम्हें उसे ज्ञानकी सामर्थ्यसे पधराना है तो शिष्येषणा नहीं रखो. कर्मकी सामर्थ्यसे पधराना है तो लोकेषणा नहीं रखो. (सब यज्ञभगवान्‌के दर्शन करने आओ हम सोमयाग कर रहे हैं!!!)

५५. साधारणतया क्या होता है कि हिमालयमें पांच-दस साल ज्ञानसाधना करके साधक मुंबईमें प्रवचन करना प्रारम्भ कर देते हैं. थोड़ी देर भक्ति करके रीतिके एक्सपर्ट हो जाते हैं और ट्रस्ट्र खोल कर जनताको बुलाते हैं कि आओ, दर्शन करो, हम भगवान्‌को पालना झुला रहे हैं.

५६. पहले तो तुम यह निर्णय करो कि तुम रामको बुला रहे हो अथवा गामको? जिसे बुलाओगे वही तो आयेगा. अखबारमें सार्वजनिक समाचार दोगे तो गाम ही आयेगा. गामको भले ही बुलाओ परन्तु वह फिर 'भक्तिमार्ग' नहीं कहलायेगा.

५७. मार्गके बदले 'योग' शब्द भी प्रयोग किया जाता है, कर्मयोग भक्तियोग ज्ञानयोग. मार्ग कहीं पहुंचनेके लिये अथवा मिलनेके लिये होता है तथा योग जोड़नेके लिये प्रयोग होता है.

५८. जब जगत्‌में तुम्हें प्रत्येकमें दोष दिखाई देता है, कहीं भी अनुराग नहीं होता, तो तुम ज्ञानमार्गपर चलो. जैसे दलपतरामकी कवितामें कहा गया है कि "ऊंट कहे आ सभामां वांका अंगवाळा भूंडा, भूतलमां पशुओने पक्षीओ अपार छे. बगलानी डोक वांकी, पोपटनी चांच वांकी, कूतरानी पूंछडीनो वांको विस्तार छे."

५९. जब जगत्‌की सभी मनोवांच्छित वस्तुएं मुझे चाहियें, ऐसा तुम्हें लगे तो तुम कर्ममार्गपर चलो. देवताओंको अर्पण करते हुये सब वस्तुओंको भोगो.

६०. जब तुम्हें दुनियांमें कोई भी सुंदर वस्तु दिखाई देती है और उसे भोगनेकी अथवा उससे भागनेकी जल्दबाजी नहीं है, उसका आनन्द लेनेकी वृत्ति भी होती है तो भक्तिमार्गपर चलो. जगत्‌में तुम्हें अतिवैराग्य नहीं है. तुम्हें लगता है कि गुलाब कितना सुंदर फूल है, लड्डू पेड़ा कितने अच्छे हैं तो प्रत्येक वस्तुका कृष्णके साथ आनन्द लेनेपर वह भक्तिमार्ग बन जायेगा.

६१. किसीको लड्डू अच्छा लगता है, स्त्री अच्छी लगती हो, मौज-शौक अच्छा लगता हो तो वह भक्तिमार्गके लिये अनुपयोगी नहीं हो जाता. लेकिन जब वह उन वस्तुओंको भगवान्‌के साथ अथवा भगवद्भक्तिकी मस्तीके अन्तर्गत नहीं लेता तो तब वह भक्तिमार्गके लिये नालायक हो जाता है.

६२. लड्डूके लिये प्रभुको मत चाहो परन्तु प्रभुका आनन्द लेनेके

लिये लड्डूको चाहो.

६३. वह भक्ति इस जीवात्मा-परमात्माके बीचका एक विशिष्ट सम्बन्ध है. परमात्मा कहता है कि तू मेरे स्वभावसे घिरा हुआ है. तू चाहे तो भी मेरे स्वभावको नहीं पकड़ सकता. परन्तु प्रत्येक वस्तुको मेरे साथ जोड़ दे. तत्पश्चात् मैं तेरा आनन्द लूंगा.

६४. अर्थात् तू सुलाये तो मैं सोऊंगा, तू भोग धरे तो मैं आरोगूंगा अन्यथा भूखा रह जाऊंगा. होऊंगा मैं विश्वम्भर दुनियांके लिये लेकिन तेरे लिये नहीं. मेरा विश्वम्भर तो तू है. होगा कोई दुनियांको सुलाने-जगानेवाला पर मुझे जगाने और सुलाने वाला तो तू ही है.

६५. वह तुम्हारी सामर्थ्य, असामर्थ्य, तुम्हारे दैन्यका आनन्द लेनेके लिये पधार रहा है. परमात्मा तुम्हारी मजा लेनेके लिये तुम्हारे घरमें पधार रहा है. और तुम दुनियांको बुला रहे हो कि देखो मैंने फूलमंडली करी है, आओ दर्शन करो. पालनेमें झुला रहा हूं. देखो मैंने कितने लड्डू पूरी मठढ़ी मेवा भोग धरी हैं (वह भी दुनियांसे भीख मांग कर इकट्ठा करके!!!).

६६. दर्शन खुले तब दर्शनार्थी तो श्रीठाकुरजीके दर्शन करते हैं और बुलानेवाले दर्शनार्थियोंके दर्शन करते हैं कि कितने आये!! कितनी भेंट धरी! जिसके दर्शन तुम खोल रहे हो उसके दर्शनमें तुम्हें रुचि नहीं है तो तुम महाप्रभुजीके मार्गसे हट गये हो. दुनियांको रिझानेके लिये भक्ति करते हो तो वैसी भक्तिको परमात्मा कभी नहीं मानेगा.

६७. क्या परमात्मा ऐसा असमर्थ है कि तुम अपरस करो तो ही

वह आयेगा? परमात्माकी अगर ऐसी मरजाद होती तो शबरीके झूठे बेर, मोहना भंगीकी कढ़ी को नहीं आरोगता. ताजबीबीके साथ चौपड़ नहीं खेलता. मैं मरजादियोंके ऊपर कटाक्ष नहीं कर रहा हूं, मुझे गलत मत समझना. लेकिन जो लोग परमात्माकी सामर्थ्यपर सीमाचिन्ह लगाना चाहते हैं कि जहां मरजाद नहीं है वहां परमात्माकी वोल्टेज् कम हो जाती है, उनको यह कहना चाहता हूं.

६८. परमात्मा तो, तुम अपरसमें हो तो अपरस माननेके लिये और तुम हीन जातिके हो तो तुम्हारे अनाचारको भी माननेके लिये तैयार है.

६९. भक्ति तथा लीला का सम्बन्ध क्या है? अब उसका विचार करते हैं. पुरुषोत्तम जोशीकी वार्तामें है कि एक समय तालाबपर महाप्रभुजी एवं पुरुषोत्तम जोशी दोनों संध्यावंदन कर रहे थे. तब पुरुषोत्तम जोशीको दैवी जानके कृपादृष्टिसुं देख्यो. तब पुरुषोत्तम जोशीने पूछी के ''कर्ममार्ग बड़ो के ज्ञानमार्ग?'' महाप्रभुजीने उसे पुष्टिदृष्टिसे नहीं देखा होता तो वह कदापि पूछता ही नहीं. और यह भी नहीं पूछा था कि भक्तिमार्ग बड़ा कि ज्ञानमार्ग. वहां महाप्रभुजीने कितना सुंदर उत्तर दिया ''जाके मनमें दृढ़ जो मारग बनी आवे वाके लिये वो मारग बड़ो.''

७०. तुम किसीसे पूछो कि ढोकले अच्छे या फाफड़े? यह प्रश्न खिलानेवालेका है कि खानेवालेका है? तुम्हें क्या अच्छा लगता है वह कहो ना!

७१. किसी भी मार्गकी बड़ी रैली अथवा लम्बी लाइन् को देख कर हम भी रैली अथवा लाइन् में खड़े हो जायें अथवा

भीड़ देख कर उसमें शामिल हो जायें और बादमें पता चले कि अरे यह तो घासलेटकी लाइन् थी और हमें तो शक्कर चाहिये थी! खड़े रहनेका समय भी बरबाद गया ना!

७२. इस प्रकार मार्गका निर्णय नहीं होता. तुम किस मार्गमें ठीकसे निष्ठावान होकर चल सकते हो, वही मार्ग तुम्हारे लिये सच्चा. फाफड़े चाहे जितने अच्छे स्वादिष्ट हों परन्तु तुम्हें अगर ढोकले अच्छे लगते हैं तो तुम्हारे लिये ढोकले अच्छे.

७३. एक स्त्रीको पहला बच्चा होना था. उसने अपनी माँसे कहा कि "जब बच्चा हो तो तुम मुझे जगा देना." तब माँने कहा कि "मूर्ख, जब होगा तब तो वह अपने आप जगा देगा." इसी प्रकार जो मार्ग तुम्हारेसे प्रसूत होगा वह तो अपने आप अपनेको तुमपर उजागर कर देगा.

७४. महाप्रभुजीने पुरुषोत्तम जोशीके प्रश्नके उत्तर देनेके बाद एक विलक्षण बात और कही "और तो बड़ो भक्तिमार्ग, जासों जीव कृतार्थ होत है". यह प्रश्न पुरुषोत्तम जोशीने कहां पूछा था? यह तो उसके प्रेमवश होकर महाप्रभुजीने कहा. जिस प्रकार गीताजीमें अर्जुनके प्रत्येक प्रश्नका उत्तर कृष्ण देते गये और आखिरमें प्रश्न बिना थोड़ी गूढ़ बात कही "सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज".

७५. गुलाबजामुन मठड़ी चाहे जितनी स्वादिष्ट हों परन्तु घोड़ेको खिलायें तो? उसको तो हरी-हरी घासको देख कर ही लार टपकेगी. कालीदासने कहा है कि "कोई भी वस्तु चाहे जितनी अच्छी हो परन्तु जिसका मन जहां लगे उसके लिये तो वही सबसे अच्छी."

७६. जिसका मन शालिग्राममें लगा हो तो उसे स्वरूपसेवामें आनन्द नहीं आयेगा. "जो जा रसके अधिकारी भरत संभारे न छलके". तुम्हारे अंदर जो बीजभाव प्रभुने रोपा है उसके अनुसार ही तुम साधना कर सकते हो और उसका फल ही तुम्हें रुचेगा.

७७. जैसे अपनूको कोई कैलाशगमन करनेको कहे तो मुसीबत लगेगी. अपनेको तो वैकुण्ठगमन ही अच्छा लगेगा. 'पुष्टिप्रवाहमर्यादा' में है कि जो जीव जिस मार्गका होता है उसके लिये वही मार्ग अच्छा और उसका फल अच्छा.

७८. लीलामें विभिन्न प्रकारकी सृष्टि है, उनमें भी भेद हैं. साधनाके फलके भेद हैं. उन भेदोंका भली प्रकारसे विवेचन करके मार्गका चयन करें तो ही आनन्द आयेगा.

७९. उसके बाद पुरुषोत्तम जोशीने पूछा 'भक्तिका क्या स्वरूप?' तब श्रीआचार्यजीने कहा कि "भक्तिको स्वरूप वर्णन करिये तो पार न आवे पर कछुक तोसों कहत हैं". उसके पश्चात् भक्तिवर्धिनीके ११ श्लोक कहे. वार्तामें आता है कि "वो उत्तम अधिकारी हते ताते सगरो बोध होई गयो" वृत्यर्थी जघन्य अधिकारीको तो ११०० श्लोकोंसे समझमें नहीं आयेगी कि भक्तिका प्रवर्धन किस प्रकार करना. उसे तो कुछ दूसरी वस्तुके प्रवर्धनका ही विचार आयेगा.

८०. ऐसे जघन्य अधिकारियोंके लिये भक्तिवर्धिनी है ही नहीं. भक्तिका वर्धन यह तो उत्तम कृष्णार्थी अधिकारियोंका ही प्रश्न है, जघन्य वृत्यर्थीका नहीं.

८१. वार्तामें आगे आता है कि "अव्यावृत होइके दोनोंने बहुत दिन

सेवा करी, वे अपने भावमें मग्न रहतें. वे काहुके आगे हृदयको भाव प्रकट न करतें...'' यह भक्तिप्रवर्धनका उपाय है.

८२. वास्तवमें प्रभुकी लीला ऐसी ही है कि इस लीलामें कोई पुष्टिजीव है, कोई मर्यादा है, कोई प्रवाही है, कोई आसुरी है. 'आसुरी' अर्थात् असु=प्राण. जो अपने ही प्राणोंका पोषण करता है वह असुर. और आसुरीजीव जो प्राणको धारण करनेवाला. इस प्रमाणसे आत्माका पोषण करनेवाला मर्यादादैवी. परमात्माका पोषण करता है वह पुष्टिदैवी.

८३. शास्त्रोंमें है कि ''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति'' जो उसका पोषण करता है उसका वह पोषण करता है. परमात्मा ऐसा भर्ता है कि तुम अगर उसका भरण नहीं करते हो तो वह तुम्हारे द्वारा भरण-पोषणकी चिंता नहीं करता. परमात्माने सृष्टि ऐसी बनाई है कि किसीका भी व्यक्तिगत पक्ष लिये बिना सर्वका पोषण हो रहा है. उसी प्रकार ''धर्मो रक्षति रक्षितः'' धर्मका जब तुम रक्षण करोगे तब धर्म तुम्हारा रक्षण करेगा. इस प्रकार यह परस्पर पोषणकी लीला है.

८४. तुलसीदासजीने कहा है कि ''कर्मप्रधान विश्व करि राखा. जो जस करहि सो तस फल चाखा.'' किसने ऐसा कर रखा है? परमात्माने.

८५. बहुतसे लोग कहते हैं परमात्माने ही हमको सृष्टिके प्रारंभमें जघन्य अधिकारी बना दिया था. अतएव हम सुधरनेवाले नहीं हैं. हम लोग परमात्माके ऊपर प्रत्येक समय अपनी त्रुटियोंका आक्षेप थोप देते हैं तो वह कहता है कि मैं तो ऐसा कुछ करता ही नहीं. तू जो करता है वही तू भोगेगा.

८६. तुम्हारी वासना अशुभ हो सकती है. तुम मुझे धंधेमें शामिल करना चाहते हो अतएव तुम जघन्य अधिकारी बन गये!

८७. तुम्हारी वासना शुभ होती, तुम कृष्णके रूपमें मेरा आनन्द मांगते होते तो तुम उत्तम अधिकारी बने होते.

८८. यह लीलाका प्रारूप ऐसा है कि जैसी जिसकी वासना वैसा उसका अधिकार सिद्ध हो जाता है.

८९. इन विभिन्न अधिकारों, इन विभिन्न भक्तिके भेदों, विभिन्न सम्प्रदायोंके भेद, यह सब प्रभुकृत लीलाभेद हैं. परन्तु प्रभु अपनेको उसमें सीधे नहीं डालते. कर्म स्वभाव काल के घड़े हुए जो आड़ हैं, प्रभु उनमें छिप जाते हैं.

९०. राजस्थानमें ऐसा होता है कि रात्रिमें बैलगाड़ीमें सामान भरके उसे चला कर, गाड़ीवाला सो जाता है. बैलगाड़ी सीधे रास्ते चल कर सुबह अपने गंतव्य स्थानपर पहुंच जाती है. लेकिन कई बार कोई परेशान करनेवाला उसे उलटी दिशामें मोड़ देता है कि जहांसे शुरु हुई थी गाड़ी वहीं वापिस आ जाती है.

९१. उसी प्रकार धर्मकी जो गाड़ी है उसे चलानेके लिये सभान सजग रहना पड़ेगा. सोते रहोगे तो कोई जघन्य अधिकारी उसे उलटी दिशामें चला देगा. क्योंकि उसका अधिकार ही ऐसा है कि वह गलत रास्तेपर चलाये बगैर रहेगा नहीं.

९२. जाग्रत रहोगे तो ही गन्तव्य स्थानपर पहुंच पाओगे. ''**धर्मः रक्षति रक्षितः**'' धर्म तुम्हारे लिये भी है और मेरे लिये भी. लेकिन तारता किसे है? जो जाग्रत है. मारता किसे है? जो

सोता रहता है.

९३. सिद्धान्तमुक्तावलीमें महाप्रभुजीने आज्ञा की है **''तस्मात् स्थानात् च नश्यति''**. यह जो सेवा समझायी जा रही है, उसमें अगर ठीक भाव नहीं है तो उस कारण तुम्हारा नाश भी हो सकता है.

९४. तुम्हारा धर्म है **''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिप:''** यह धर्म तुम्हें वास्तवमें तारेगा यदि तुम सभान हो तो. परन्तु जो तुम सोते रहोगे तो कोई न कोई आजीविकार्थी जघन्याधिकारी तुम्हारे धर्मके बैलको जघन्य विषयोंकी प्राप्तिमें हांक देगा तो यह धर्म ही तुम्हें मार देगा.

९५. **''तस्मात् स्थानात् च नश्यति''** यह बात भक्तिवर्धिनीमें नहीं कही है क्योंकि इसमें भावका प्रश्न है. इसमें तो कहते हैं **''हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशय:''**. लेकिन कब रक्षा करेंगे? जब तुम सेवाकी रीतिको भक्तिवर्धिनीमें वर्णित रीतिसे जीवनमें ला सको. जब तुम सेवाकी रीतिको जीवनमें नहीं ला सकते तो यह सेवाकी रीति जघन्य अधिकारी बना कर तुमको मार भी सकती है. **''तस्मात् स्थानात् च नश्यति''** यह सिद्धान्तमुक्तावलीका अकाट्य सिद्धान्त है, यह भूलना नहीं चाहिये.

९६. जैसे शहरमें रामलीला कृष्णलीला करनी हो तो उस लीलाके संवादरूप गीत पहलेसे ही तैयार होते हैं. उसी प्रकार तुम्हारी लीलाके जो रूप हैं वह तुम्हारे काल कर्म स्वभाव से तय होते है.

९७. पुष्टि भक्तिलीलाका स्वरूप सिद्धान्तमुक्तावलीमें वर्णित रीतिसे तय हुआ है. यह कोई बेढंगी गाड़ी नहीं है कि जिसे जैसा अच्छा

लगे वैसे हांक दो. जघन्य कोटीकी तरफ हांकनी हो तो जघन्य कोटीकी तरफ हांक दो और उत्तम अधिकारकी तरफ हांकनी हो तो उस तरफ हांक दो. यह गाड़ी ऐसे नहीं चलती, यह तो प्रीतिवाली रीति है.

९८. बहुत लोग कहते हैं कि परमात्माकी इच्छाके बगैर पत्ता भी नहीं हिलता. ऐसा कह कर सब कुछ परमात्मापर डाल देते हैं. इस संदर्भमें एक बहुत सुंदर बात है. एक मनुष्यका घर नदीकी बाढ़में घिर गया. थोड़ी देरमें एक नाववाला उसे बचाने आया. उसने नाववालेसे कहा कि तू मुझे बचानेवाला कौन? परमात्मा मुझे बचायेगा. पानी बहुत ऊपर चढ़ गया तो एक मोटरबोटवाला उसे बचाने आया. लेकिन उसकी मदद भी उसने लेनेसे इन्कार कर दी. आखिरमें पानी छत तक चढ़ गया. तब एक हॅलीकॉप्टर् उसे बचाने आया और एक रस्सी उसके पास फैंकी कि उसके द्वारा चढ़ कर आ जाये. उसकी मदद भी उसने लेनेसे इन्कार कर दी. आखिरमें वह पानीमें डूब गया और स्वर्ग गया. वहां उसने भगवान्के पास शिकायत की कि ''मैंने तुम्हारेपर विश्वास किया पर तुमने मुझे क्यों नहीं बचाया?'' तब परमात्माने कहा ''मैंने तो तुझे तीन बार बचानेके लिये आदमी भेजे. परन्तु तू ही बचना नहीं चाहता था तो मैं क्या करता?''

९९. उसी प्रकार परमात्मा हमको ग्रन्थादि शास्त्र, उसमें भी महाप्रभुजी गुसांईजी श्रीहरिरायजी इत्यादिके उपदेश रूपी नाव मोटरबोट हॅलीकॉप्टर् मेंसे रस्सी इत्यादि फेंकता है कि इन द्वारा बच जाओ लेकिन हम कहते हैं कि ''नहीं! हम तो जघन्याधिकारी हैं. हमें बचनेकी कोई जल्दी नहीं है.'' यह लीला तो वास्तवमें प्रभुकी विचित्र लीला है.

१००. अब लीला और भक्ति का स्वरूप समझनेका प्रयास करते हैं. हमारे यहां तो सब कुछ परमात्माकी लीला है. तो ऐसा कैसे कह रहे हो? श्रुतिमें ऐसा कहा गया है कि परमात्माने यह सृष्टि अपनी आत्मासे बनाई है. परमात्मा आनन्दरूप है. आनन्दका स्वभाव ही यह है कि मजा लो.

१०१. कितना महान आनन्द हो लेकिन उसका मज़ा नहीं लिया तो आनन्द, आनन्द ही नहीं रह जाता.

१०२. उपनिषदोंने प्रभुको आत्माराम कहा है. अर्थात् जो अपनेमें ही आनन्दित है. जैसे कोई रूपवती स्त्री अपना मुख दर्पणमें देख कर आनन्दित होती है वैसे.

१०३. किशनगढ़ दरबार तो खुदके गलेमें दर्पण पहरते. जिससे शृंगार धराते समय एक-एक आभूषणकी शोभाको खुद ठाकुरजी निहार सकें. यह उन दोनोंके बीचका व्यवहार है. प्रीतिके कारण नई रीति गढ़ी, उसमें कोई अपराध नहीं है.

१०४. वार्ता साहित्य पढ़ो तो पता चलेगा कि श्रीगोकुलनाथजी ८४ वैष्णवोंकी वार्ताको ताले-चाबीमें रखते थें परन्तु उनकी गैरहाजिरीमें लालजीने उसकी प्रतिलिपि कर ली और बादमें घर-घरमें वार्ता प्रकट हो गई. तब आपको बहुत क्रोध आया कि "अरे यह तो एकान्तमें हमारे आनन्द लेनेकी बातें थीं कोई बाहर प्रकट करनेकी थोड़े ही थीं." श्रीठाकुरजीकी बातें तो ठीक, परन्तु महाप्रभुजी एवं उनके सेवकों की बातें भी एकान्तमें आनन्द लेनेके लिये मानी जाती थीं. बादमें आपने मान लिया कि होगी कुछ भगवद् इच्छा.

१०५. चौरासी वैष्णवोंकी तथा किशनगढ़ दरबारकी जो बात कही वह

तो सब एकान्तमें प्रणयके आलाप हैं. वह कोई सार्वजनिक करनेके नहीं हैं. मैं भी जो उन्हें सबके आगे बता रहा हूं वह इस हेतुसे कि हम लोग सिद्धान्त समझ नहीं रहे हैं. धर्मके बैलको गाड़ीमें जोत कर सो गये हैं.

१०६. दर्पण दिखानेकी भी एक पद्धति है हमारे यहां. एक ऐसी रीतिसे दिखाते हैं कि मात्र प्रभु ही अपना स्वरूप उसमें देख सकें. बादमें उसे टेढ़े करके इस प्रकार दिखाते हैं कि हम भी उसमें प्रभुका स्वरूप दर्शन कर सकें. उसका भाव यह है कि इस आरसीमें जिस प्रकार आपका स्वरूप प्रतिबिंबित हो रहा है वैसे ही हमारे हृदयमें कब पधारोगे? ऐसा निर्मल हृदय हमारा कब बनेगा? इस भावके साथ दर्पणको हृदयसे लगाना होता है.

१०७. तात्पर्यत: यह हृदयका भाव है लेकिन जब दुनियांको दिखानेके लिये ठाकुरजीको शृंगारित किया जाता है तब आरसी जैसा निर्मल हृदय नहीं रह जाता.

१०८. यह सब सेवा लीलारूपमें आनन्द लेनेके लिये है. दुनियांको दिखानेके लिये नहीं. नहीं तो सब क्रिया नाटक हो जायेगी.

१०९. अपने सारे क्रिया-कलाप : (१) कुछ व्यवहाररूपमें होते हैं. (२) कुछ नाटकरूपमें होते हैं. (३) कुछ लीलारूपमें होते हैं.

(१) शादी-ब्याहमें सम्बन्धी मिलते हैं उसमें केवल व्यवहार ही होता है.

(२) नाटक दो प्रकारका होता है :

(क) अगर मनोरथकी सजावट नहीं करेंगे तो कोई आयेगा ही नहीं. इस कारण समाधानीको 'जयश्रीकृष्ण' बोलना ही पड़ता

है. हमें ऐसा लगता है कि उसे कृष्णके जयकी कितनी कामना है! परन्तु यह ठगनेका नाटक है. थोड़ी देर बाद कहेगा ''हमारे यहां फूलमंडली रखी है. उसमें तुम कुछ तो सेवा करो.'' यह नाटक किसलिये करना पड़ता है? दूसरेका पैसा लेनेके लिये. जयश्रीकृष्ण बोल, थैलीका मुंह खोल.

(ख) दूसरा नाटक ऐसा है जिसमें कुछ लेना-देना नहीं है परन्तु किसी कथारसको अभिव्यक्त किया जाता है. (कृष्णलीला रामलीला) इसमें रावण सीताको हर कर ले जाता है. लेकिन उसमें उसका सीताके प्रति कोई अनुराग नहीं होता. परन्तु मात्र कथारसको प्रकट करना है.

(३) लीला भी तीन प्रकारकी होती है : (क) सृष्टिलीला (ख) शुद्धलीला (ग) अवतारलीला.

(क) सृष्टिलीला = यह समग्र जगत् लीलाके लिये प्रकट किया है. परमात्मा नटकी तरह तो नाटक नहीं कर सकता क्योंकि उसे देखनेवाला कोई और तो नहीं है. यह तो आनन्दरूप परमात्मा अपने ही आनन्दके लिये द्रष्टा तथा दृश्य रूपसे आप ही प्रकट हुआ है. जैसे सुंदर स्त्री दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखती है, उसी प्रकार परमात्मा जीवात्मारूप दर्पणमें अपने ही रूपको देखता है. उत्तम अधिकारीमें अपना उत्तम रूप देखता है तथा जघन्याधिकारीमें अपना जघन्य रूप देखता है.

जैसे आमकी गुठलीमेंसे तना डाली पत्ते मौर आम सब कुछ निकलता है. प्रत्येकका रंग रूप स्वाद अलग-अलग है. इसी प्रकार परमात्मा अपनी एकतामें रही हुई विविधता देखनेके लिये उच्च-नीच भावसे सृष्टि प्रकट करनेकी लीला करता है. यह लीलासृष्टि मात्र आंतरिक उत्साह प्रकट करनेके लिये रचता है. इसमें उसे किसीको कुछ ठगना नहीं, किसीसे कुछ चाहना नहीं. (हमारी बिल्डिंग्का बच्चा जब कभी टी.वी. पर मॅच् देखता है तो बादमें उसके अन्दर भी जोश उमड़ता है. वह गॅराज्के

दरवाजेको विकेट बना कर बॉल् फेंकता है, दौड़ता है, बॉलको घिसता है, थूक लगाता है, सब क्रियायें करता है. उसे कोई देखनेवाला नहीं है, उसका कोई जोड़ीदार नहीं है, किसीको ठगना नहीं. यह तो केवल टी.वी. देखनेके बाद उस मॅच्के आनन्दका प्रकटीकरण है. इस प्रकार मनुष्यमें भी कोई न कोई लीला प्रकट हो ही जाती है.) सृष्टिकी लीला भी ऐसी है ''ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे. जागीने जोऊं तो जगत दीसे नहीं, ऊंघमां अटपटा भेद भासे''.

(ख) शुद्ध लीला = इसकी चर्चा यहां नहीं करते.

(ग) अवतार लीला = परमात्मा भूतलपर अवतीर्ण हो कर कुछ न कुछ लीला करता है. प्रभु इस लीलामें माखन चुराता है, स्वयं शैतानी करता है, हंसे, रोये, हंसावे, मार खाय, मार खवाये, इस लीलामें कोई भी स्वार्थ नहीं है, किसीको ठगना नहीं है.

११०. इस अवतार लीलाका प्रतिबिम्ब भक्तोंके हृदयमें पड़ता है. भक्तोंका हृदय परमात्माकी आरसी बन जाता है. जैसे रूपवती स्त्री आरसीमें स्वयंको देख कर आनन्दित होती है वैसे ही जब भक्त कहते हैं ''नैन भर निरखो नंदकुमार'' तब परमात्माको लीला करनेका मूड् आ जाता है.

१११. इस लीलाका प्रतिबिम्ब हृदयमें पड़े वह भक्ति. तुम शांत चित्तसे विचारो कि महाप्रभुजी किस प्रकारकी वृत्तिको भक्ति कहना चाह रहे हैं. दर्शन श्रवण आघ्राण कृति गति रति मति, जहां-जहां इस लीलाका प्रतिबिम्ब पड़ता है वहां-वहां भक्ति प्रकट हो रही है. और जिस-जिस इन्द्रियमें इसका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता वह-वह इन्द्रिय व्यर्थ है. उस-उस इन्द्रियका निग्रह करना चाहिये. **''यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते तदा विनिग्रहस्तस्य**

कर्तव्य इति निश्चयः''.

११२. मैंने बहुतसे संप्रदायोंका साहित्य अच्छी तरहसे पढ़ा है. मैं बहुतसे सॅमिनारोंमें भी गया हूं. वहां मैंने अपने एक भी शब्द नहीं कहा परन्तु महाप्रभुजीके दो-तीन श्लोक अनुवाद करके कहे तो वहां सबने मुझे घेर लिया कि ऐसी बात तुम कहांसे लाये? बाहरके लोग इसकी सुंदरताके पारखी हो जाते हैं. फिलॉसॉफीके हॅड्‌ ऑफ्‌ डिपार्टमेंट्‌ एक बहिन थीं उन्होंने मुझे कहा कि शब्दोंको इस प्रकार बांधनेका प्रयास मैं पिछले पंद्रह सालोंसे कर रही हूं लेकिन इतने सुंदर तरीकेसे आज-तक नहीं बंधे.

११३. बादमें सबने पूछा कि यह किसकी बात है? कौन हैं वल्लभाचार्य? हमने तो नहीं सुना. तब मुझे ऐसा लगता कि धरती फट जाये तो उसमें समा जाऊं. अपनी कैसी दुर्गति? कोई वल्लभाचार्यजीको पहचानता तक नहीं!

११४. हम कितने नालायक हैं. ऐसे उत्तम कोटिके आचार्य जिनके दो-तीन श्लोकोंके भावानुवाद करते ही लोग चमत्कृत हो जाते हैं. हमको इसका केवल भावानुवाद ही नहीं परन्तु विस्तार करना चाहिये जिसके बदले हम लड्डू-पूड़ीके मनोरथोंका विस्तार करते हैं.

११५. हमने श्रीवल्लभाचार्यको गायब कर दिया है और लड्डू पूड़ी बूंदी की सजावटको प्रकट कर दिया है. यह किस प्रकारका वल्लभसम्प्रदाय है?

११६. मुझे बहुतसे लोग कहते हैं ''छप्पन भोगमें कितने बड़े-बड़े मोहनथाल. ऐसे मोहनथाल तो आप ही बना सकते हो, हम

जीवोंकी क्या सामर्थ्य!'' महाप्रभुजीके सिद्धान्तोंको दिखाये. एक तो वह महाराज अथवा बड़े मोहनथाल बनाये एक वह महाराज रसोईया! वास्तवमें धिक्कारकी बात है कि हम महाराजोंकी किस प्रकार दुर्गति हुई है!!

११७. महाप्रभुजी कहते हैं कि तुम्हारी इन्द्रिय भगवान्‌की लीलाका आनन्द लेनेके लिये तैयार नहीं हैं तो उनमें अनुरक्ति नहीं रखो. जैसे अपने घरमें सांप घुस जाए तो कैसे घबरा जाते हैं? उसी प्रकार अपनी देहमें ऐसी इन्द्रिय सांपकी तरह घुसी हुई मानें तो ही हम भक्तिके अधिकारी हैं. लेकिन जब हम ऐसी इन्द्रियोंके विषयोंमें आनन्द लेने लगते हैं, उनमें रचे-पचे रहते हैं तो ''मुद्दई तू इश्करा नालायकी'' हम भक्तिके लिये नालायक हैं.

११८. मुझे वास्तवमें महाप्रभुजीके सिद्धान्तोंको कहनेमें रोमांच होता है और दुःख भी होता है. इतनी सुंदर बात हम लोग समझते क्यों नहीं? किस कारण हम वृत्यर्थी जघन्य अधिकारी बनना चाहते हैं? कमसे कम जनताको तो गलत रास्तेपर मत चलाओ!

११९. मुझे ग्रन्थ प्रारम्भ करनेसे पहले बहुत कुछ कहना पड़ रहा है. वास्तवमें तो महाप्रभुजीके वचन ही इतने रोचक हैं कि मुझे उनकी कोई भूमिका बांधनेकी आवश्यकता नहीं थी. परन्तु सम्प्रदायमें इतना कुछ उल्टा-सीधा हो रहा है कि जिसमें महाप्रभुजीको अभिलषित भक्ति ही प्रकट नहीं हो रही. भक्तिके अतिरिक्त कुछ और ही प्रकट हो रहा है. और **''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः स्वस्यायमेव धर्मोहि''** वाले अधिकारियोंको जघन्य अधिकारी दूसरे रास्तेकी ओर ही हांक रहे हैं. इसके लिये मात्र सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण करनेके लिये, बगैर किसीसे द्वेषरागके, मुझे कहना पड़ रहा है. जिससे कि हमें महाप्रभुजीको अभिलषित भक्तिका

स्वरूप समझमें आवे. अतएव भक्तिकी भूमिकाके रूपमें मुझे थोड़ा बहुत कहना पड़ता है.

१२०. "लीला मानो तो ही भक्ति" यह समझनेके लिये एक पहलू है. और भक्तिको समझें तो ही उसे बढ़ानेका प्रसंग आयेगा.

१२१. कोई मुझे कहता है "आप स्पष्टीकरण दो" यह तो महाप्रभुजीके ऊपर ही आक्षेप है. इसकी जिम्मेदारी आपके ऊपर है. मुझे तो आक्षेपका महत्व हो तो भी कुछ अन्तर नहीं पड़ता और नहीं भी हो तो भी नहीं. स्पष्टीकरण हो तो भी कोई कष्ट नहीं है और न भी हो तो भी. मैं तो दोनों ओरसे स्वीकारनेके लिये तैयार हूं. मैं कोई अपनी बात तो कह नहीं रहा. लोग गुस्सा हुये हों तो वह तो महाप्रभुजीपर हुये होंगे! मैं तो इसका हिस्सेदार बनता ही नहीं. मैं तो केवल इतना ही विचारता हूं कि समग्र विश्वमें जहां-जहां पुष्टिमार्गीय बसते हैं उनमें पुष्टिअस्मिता जागे कि "मैं पुष्टिमार्गीय हूं." उस अस्मिताको जगानेके लिये गाना गानेवाला एक गायक हूं.

१२२. आगे हमने व्यवहार नाटक एवं लीला का विवेचन किया. जो कुछ स्वार्थ प्रेरित व्यवहार है चाहे वह पारिवारिक प्रांतिक राष्ट्रीय हो अथवा आंतरराष्ट्रीय हो परन्तु उसमें मुख्य प्रेरणा सुखप्राप्तिके लिये अथवा दुःखनिवृत्तिके लिये होती है. इन स्वार्थ प्रेरित व्यवहारोंका जैसे प्रयोजन सुख-दुःखके साथ होता है वैसे ही परिणाम भी सुख-दुःखात्मक होता है.

१२३. प्रत्येक व्यवहार सुख-दुःखके प्रयोजनसे ही प्रकट होता है और खुद भी प्रकट हो कर सुख-दुःख ही प्रकट करता है आनन्द नहीं.

१२४. सुख-दुःख एवं आनन्द में एक अन्तर है. हमें सुखकी अनुभूति होती है तो लगता है कि आनन्द हुआ परन्तु प्रत्येक सुख आनन्दरूप नहीं होता.

१२५. बच्चा बीमार हो अथवा रोता हो तो मांकी नींद उड़ जाती है. नींद उचटनेसे दुःख तो होता ही होगा परन्तु इस दुःखमें उसके मातृत्वको किसी न किसी अंशमें आनन्द तो मिलता ही है. यह आनन्द ऐसी वस्तु है जिसकी व्याख्या सुख-दुःखकी अनुभूतिमें हो नहीं सकती.

१२६. व्यवहारमें भी पारमार्थिक भावना हो, फलकी आकांक्षा न हो तो उसे सुख कदाचित् न भी मिले, लोग उसे गाली दें. उदाहरणके लिये गांधीजी हिन्दु-मुसलमानोंके साथ निष्पक्ष व्यवहार करना चाहते थे. परिणाम स्वरूप गोली खाई. तो क्या उन्हें गोली फूल जैसी लगी होगी? नहीं, दुःख तो हुआ ही होगा लेकिन इस दुःखमें किसी प्रकारका आनन्द रहा हुआ होता है.

१२७. इसी प्रकार ठगनेके नाटक भी सुख-दुःख उत्पन्न करनेवाले होते हैं. लेकिन कथारस प्रकट करनेवाला नाटक आनन्द ही प्रकट करता है.

१२८. पहले एक नाटकमें हरिश्चन्द्रपर विश्वामित्र द्वारा की गई ज्यादतियोंको देख कर नाटक पूरा होनेके बाद जनतामेंसे एक आदमीने विश्वामित्रकी जटा उखाड़ ली. तब विश्वामित्रका पार्ट अदा करनेवाले कलाकारने कहा "आपने वास्तवमें मेरा सच्चा सम्मान किया है".

१२९. अतिशय करुण नाटक अथवा कोई डरावनी फिल्मको बहुत अच्छा

माना जाता है क्योंकि उसमें रोने या डरने का आनन्द है. ऐसे ही किसी नॉवल्‌को पढ़नेमें भी आनन्द आता है.

१३०. लीलाका मुख्यबोध आनन्द ही है. लीलामें दु:खमें अथवा सुखमें आनन्द ही होता है. महाप्रभुजी निरोधलक्षणमें इच्छा कर रहे हैं कि ''जैसा दु:ख यशोदा नंदराय तथा गोपिकाओं को हुआ वैसा दु:ख मुझे कब होगा?'' और आगे कहते हैं कि ''गोपिकाओंको जो सुख हुआ वह मुझे कब प्राप्त होगा?'' भगवान्‌ सम्बन्धित सुख तथा दु:ख दोनों ही आनन्द प्रदान करनेवाले हैं.

१३१. व्यवहारमें भी जब कोई व्यक्ति परमार्थ करता है तब वह लीला ही करता है. लेकिन मनुष्यके संदर्भमें 'लीला' शब्दका प्रयोग नहीं करते परन्तु उसे 'सज्जन' अथवा 'महात्मा' कहते हैं. लेकिन वास्तवमें उसकी कृति आनन्द ही प्रकट करती है.

१३२. श्रुति कहती है यह सृष्टि आनन्दमेंसे प्रकट हुई है, आनन्दमें ही स्थित है और आनन्दमें ही लीन होनेवाली है. तुम्हें अगर सृष्टिमें कुछ समझना है तो आनन्दको पहचाननेका प्रयास करो. ऐसा करनेपर तुम्हें लीलाबोध होगा. सुख-दु:खको पहचाननेका प्रयास करोगे तो व्यवहारका ही बोध होगा. अतएव पहली आवश्यकता यह है कि हमें सुख-दु:खको पहचाननेके बजाय आनन्दको पहचाननेकी वृत्ति अपनानी होगी.

१३३. श्रुति कहती है इस जगत्‌में आनन्द न होता तो मनुष्य सुख-दु:खका व्यवहार भी नहीं कर पाता. इस सुख-दु:खका जो व्यवहार चलता है उसका कारण भी यह है कि यह सृष्टि आनन्दमेंसे ही प्रकट हुई है. इस कारण मनुष्य आनन्दका विचार करके सुख-दु:खको झेल जाता है.

१३४. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं ''**ज्ञात्वा पाने महान् रस:**'' आनन्दको जाननेपर ही महान रस प्राप्त हो सकता है. इस आनन्दकी मीमांसा करनी चाहिये अर्थात् हृदयके भीतर, बुद्धिके भीतर जो आनन्दको जाननेका मंथन प्रारम्भ होगा तो उस समय तुम्हें आनन्दका अनुभव होने लगेगा.

१३५. प्रत्येक बातमें छुपा हुआ गूढ़ आनन्द तुम्हें धीरे-धीरे कोई न कोई संकेत देने लगेगा, जैसे सूर्य उगनेसे पहले पूर्व दिशाकी लालिमा तुम्हें संकेत देती है कि अब सूर्य उगनेवाला है. उसी प्रकार आनन्दकी मीमांसा करने बैठोगे और सुख-दु:खका रोना रोते रहोगे तो उसके बाद न तो आनन्द प्रकट होगा और न ही आनन्दका उषाकाल प्रकट होगा.

१३६. आनन्दका बोध तो लीलाका सर्वप्रथम बोध है. जिसे आनन्दका बोध होता है वही लीलाको समझ सकता है. जिसे सुख-दु:खका ही बोध है वह लीला नहीं समझ सकता. उसके सुख-दु:खका रोना तो चालू ही रहेगा.

१३७. अतएव भगवान् जो कुछ करते हैं उसका आनन्दबोधसे मजा लेना चाहिये अथवा नहीं? ''प्रभु सब भली ही करते हैं'' यह भाव किस कारण जगानेमें आता है? ''**तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्**''.

१३८. यह इसलिये नहीं कहा कि महाप्रभुजीको तुम्हारी चिंताकी बहुत फिक्र है. लेकिन महाप्रभुजीको वास्तवमें यह चिंता थी कि ऐसी चिंता तुम करोगे तो तुम भगवान्‌की लीलाको पहचान ही नहीं पाओगे. क्योंकि तुम सुख-दु:खकी चिंतामें खो गये.

१३९. महाप्रभुजीको वास्तवमें चिंता तो यह थी कि तुम आनन्दके

बोधसे वंचित रह जाओगे. जो कुछ हो रहा है उसे **''लोकवत्तु लीला कैवल्यम्''** प्रभुकी लीलाका भाव जागा नहीं कि आनन्दका उषाकाल प्रकट हो जायेगा और यह भक्तिके भावोंकी बढ़नेकी प्रारम्भिक दशा है.

१४०. लीलाविशिष्ट पुरुषोत्तमको अपनी लीलाका सौन्दर्य देखनेके लिये दर्पण चाहिये. इस कारण उसने भक्तोंको प्रकट किया. उनकी भक्तिमयी निर्मल चेतनामें अपना लीलाविशिष्ट सौन्दर्य देख सके. इसीलिये उपनिषदोंमें कहा गया हैं **''स एकाकी न रमते स द्वितीयम् ऐच्छत्''**.

१४१. द्रष्टारूपमें अपनेमेंसे ही पुष्टिभक्तिभावका दर्पण प्रकट किया. भक्तिमयी चेतनाका दर्पण. लेकिन उसका सौन्दर्य झेलनेके लिये हम तैयार नहीं हैं. हम तो उस दर्पणको दर्शनार्थियोंकी ओर कर देते हैं. तो हमें उस दर्पणमें प्रभुका लीलाविशिष्ट सौन्दर्य दिखाई देगा कि दर्शनार्थियोंका व्यापारिक कुरूप?

१४२. अपनी भक्तिमयी चेतनामें परमात्माके लीलाविशिष्ट सौन्दर्यका प्रतिबिम्ब पड़नेको ही 'भक्ति' कहते हैं. इसके अतिरिक्त भक्तिकी कोई दूसरी व्याख्या नहीं हो सकती.

१४३. **''यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चय:''** ऐसी आरसी किस कामकी कि जिसमें भक्तिका सौभाग्यसूचक सिंदूर (पॉलिश्) उड़ गया हो? पारदर्शी शीशा कभी भी दर्पण नहीं बन सकता. उसमें तो पुष्टिप्रभुके पुष्टिसौन्दर्यके बजाय प्रवाही धूल ही नजर आयेगी. दर्शनार्थियोंकी भीड़को पुष्टिप्रभुके बजाय व्यापारिक लड्डू पूड़ी मोहनथाल केशर-काजूकी हटरीकी नौटंकी ही नजर आयेगी.

१४४. अतएव पहले यह समझ लो कि भक्ति और लीला का सम्बन्ध किस प्रकारका है. जैसे सुंदर मुख और सुंदर दर्पण. जब सुंदर दर्पणमें सुंदर मुख प्रतिबिम्बित न हो तो दर्पण केवल निर्मल है लेकिन सुंदर नहीं. वह सुन्दर कब लगेगा? जब उसमें सुन्दर मुखाकृति दिखाई देगी.

१४५. अगर उसमें प्रभुका प्रतिबिम्ब नहीं दिखता तो फैंक दो ऐसे दर्पणको. जो सेवोपयोगी न हो तो उसका संग्रह किस कामका? इसके लिये ही महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं **''गृहं सर्वात्मना त्याज्यम्''** जो वह शक्य न हो तो उसे कृष्णसेवामें योजित करो. वह तुम्हें घरके अनर्थोंसे बचायेगा. जो घर कृष्णसेवाके काममें नहीं आता वह तो विधवाका घर है. सिंदूर उड़ा हुआ शीशा है. जिस घरमें भगवान्की लीला नहीं, उसे छोड़ दो, उसे फैंक दो. ऐसा होते हुये भी तुम्हें बहुत लगाव है घरसे तो लगाओ उस दर्पणके पीछे भक्तिका सिन्दूर.

१४६. जब देह इन्द्रिय प्राण दारा आगार पुत्र सबमें भगवल्लीला झलकेगी तब भक्तका सारा संसार ही भगवल्लीलाका दर्पण बन जायेगा.

१४७. भक्तिका मूलभाव किस प्रकारका है उसे समझो. भक्तिका आदर्श स्वरूप प्रारम्भसे ही इस प्रकारका नहीं बन जाता. लेकिन जो तुम ठाकुरजीको अपने माथे पधराओगे तो वह धीरे-धीरे तुम्हारे हृदयमें पधार जायेंगे. पहले हृदय निर्मल होगा. हृदयमेंसे अन्य वासना दूर होंगी. भक्तिका मूलभाव क्या है उसे ठीक प्रकारसे समझो. **''तस्य सेवां प्रकुर्वीत यावज्जीवं स्वधर्मत: न फलार्थं न भोगार्थं न प्रतिष्ठाप्रसिद्धये, श्रीमदाचार्यमार्गेण नान्येनापि कदाचन न कल्पितप्रकारेण न दुर्भावसमन्वयात्''**.

१४८. सिद्धान्तमुक्तावलीमें वर्णित रीतिसे सेवा करते हुये **''चेतस्तत् प्रवणं**

सेवा'' हो जायेगी. उससे तुम्हारे दिलका समर्पण ऐसा होगा कि ''दिलके आइनेमें है तस्वीरे यार. जब जरा गरदन झुकाई देख ली.'' तत्पश्चात् तुम्हारी सेवा भक्तिके रूपमें खिल जायेगी.

१४९. यह कोई खिलवाड़ नहीं है. यह कोई व्यापार नहीं है. जघन्य अधिकारीको लगता होगा ''तो क्या समुद्रमें डूब जायें या मर जायें'' लेकिन मरनेकी आवश्यकता नहीं है. दिलको निर्मल बनानेकी जरूरत है. 'तस्वीरे मनोरथी' सेठियाकी नहीं. 'तस्वीरे यार' होनी चाहिये.

१५०. जब चित्त दर्शनार्थीमें प्रवण न हो, भोग प्रतिष्ठा धन में प्रवण नहीं हो, तब चित्त कृष्णमें प्रवण होगा.

१५१. एकने मुझे कहा कि ''योगकी प्रक्रियासे आत्माको देहसे छुटा करके जानना चाहिये. अपने धर्ममें तो यह बात कहीं भी नहीं कही गई''.

१५२. ध्यानसे समझो कि शरीरके बारेमें आत्मबोध किसी योगीको ही होता है. प्रत्येकको तो होता नहीं. कोई महान योगी ही देहसे व्यतिरिक्त आत्माको जान सकता है. लेकिन वह भी उसकी साधक अवस्थामें तो कमसे कम नहीं. इसीसे 'बालबोध'में महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं **''जब जीव स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है तब कृतार्थ होता है''** देहस्थ जीव कृतार्थ नहीं होता लेकिन स्वरूपस्थ जीव कृतार्थ होता है. योगकी अथवा सांख्यकी प्रक्रियासे स्वरूपमें स्थित हो जाय तब कोई कृतार्थ होता है. लेकिन वह भी योगकी साधनावस्थामें तो होता नहीं. योगके तो बहुतसे भाषण होते हैं परन्तु इतना सहज नहीं है.

१५३. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं यह संसार कैसा है? ''संसरति इति

संसार'', ''ज्ञानेन गच्छति'' परन्तु कैसे ज्ञानसे? क्या आत्मसाक्षात्कार द्वारा? आत्माका साक्षात्कार हो या न हो उसकी चिंता करनी जरूरी नहीं है. हमारे यहां तो हमको जो अविद्या मिली है जिसके कारण हम तन-मन-धनको अपना समझ बैठे हैं. (तन = मैं, मम = मेरा घर, बेटा, पैसा यह सब) मैं और मेरा इन सबको प्रभुमें लगाओ. तुम्हारी अहंता-ममतात्मक संसारको प्रभुमें जोड़ दो. प्रभुको संसारमें मत जोड़ो.

१५४. यह अविद्या हमें मिली है, जिसके कारण इस तन-मन-धनको हम अपना समझ बैठे हैं. लेकिन यह तो हमें हमारे आनन्दनिधि द्वारा दिया गया तोहफा है. नहीं तो अगर मैं केवल चेतना होंउ तो क्या करूंगा? जब देह ही नहीं होगी तो मैं सेवा करने लायक ही नहीं रहूंगा.

१५५. अतएव महाप्रभुजी निबंधमें आज्ञा करते हैं **''ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् आत्मनैव सुखप्रमा संघातस्य विलीनत्वाद् भक्तानां तु विशेषत: सर्वेन्द्रियैस्तथा चान्त:करणै: आत्मनापि हि ब्रह्मभावात् तु भक्तानां गृहएव विशिष्यते''**.

१५६. एक नदीमेंसे एक लोटी पानी भरते हैं तो वह लोटीका पानी नदीसे अलग हो गया. पानी तो एक ही है परन्तु लोटीके कारण भेद पड़ गया. उसी प्रकार इस अहंता-ममताकी लोटीमें परमात्मा रूपी नदीमेंसे जीवचेतना प्रकट हुई. परिणामस्वरूप लीला प्रकट हुई. इस लोटीको समाप्त कर दो तो लीला समाप्त हो जायगी.

१५७. मथुरामें श्रीयमुनाजीमेंसे लोटी भर कर किनारे पधरा कर श्रीयमुनाजीसे विनती करते हैं 'आरोगो'. पानीको पानी धरना होता है क्या?

यमुनाजीको दूध दही मठड़ी धरो. यमुनाजीको पानी पिलानेकी क्या जरूरत? परन्तु ऐसा तर्क श्रीयमुनाजी नहीं करतीं. यह तो बिगड़े दिमागवाले आदमी करते हैं. श्रीयमुनाजी तो कहती हैं "भक्तिसे मुझे जो कुछ पत्र पुष्प फल जल धरोगे वह सब मैं बहुत रुचिसे अंगीकार करती हूं."

१५८. विचार करो कि पत्र पुष्प जल रूपमें कौन प्रकट हुआ है? एक ही परमात्मा पत्र पुष्प जल रूपमें प्रकट हुआ है. वह ही अपने पर अर्चित होनेके लिये प्रकट हुआ है. यह ब्रह्म ही फूल स्वरूपमें, ठाकुरजीरूपमें प्रकट हुआ है. प्रभु अपनेको ही अपना भोग धर रहे हैं.

१५९. कबीर कहते हैं "पानी बिच मीन पियासी, मोहे सुन सुन आवे हांसी". लेकिन ऐसी बुद्धि जागती किसमें है? जिसमें लीलाबोध न हो उसमें. **"एकोहं बहुस्याम्"**की लीला है जिसमें बहती यमुनाजी पानकर्त्री बन कर लोटीमें स्वयंका पानी पेय बन कर पान करती हैं. उसी प्रकार परमात्मा अपनेको दो प्रकारसे प्रकट करता है. एक भक्तरूपमें और दूसरे परमात्मारूपमें. भक्तरूपमें अपनी लीलाको देखता है. परमात्मारूपमें अपनी लीला दिखाता है. "ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे."

१६०. जो एक अनेक हुआ वह कहीं उपकरणरूपमें हुआ, कहीं लोटीरूपमें हुआ परन्तु हुआ तो वही परमात्मा ना! इसी प्रकार अपनी अहंताको अपन् गाली नहीं देते, उसको 'बापकी लुगाई' नहीं कहते उसे तो 'मां' ही कहना चाहिये.

१६१. इस अहंता-ममता रूपी पात्रको फैंक नहीं देते. यह तो प्रभुकी सौगात है. एक शायरने कहा है कि "प्रेमके कारण मेरे दिलमें

बहुत दुःख हुआ परन्तु वह तो मेरे प्रियकी दी हुई सौगात है." महाप्रभुजी इसी सिद्धान्तको अपनाते हैं. शुद्ध चेतना सेवा करने लायक नहीं रहती वह तो परमात्मामें मिल जाती है.

१६२. उपनिषद्का उपदेश है **"अहम् अन्नम्!, अहम् अन्नम्!!, अहम् अन्नम्!!!,अहम् अन्नादो!, अहम् अन्नदो!!, अहम् अन्नादो!!!"** कौन किसे खा रहा है? मैं ही अपने आपको खवा रहा हूं. यह तुमको समझमें आये तो तुमको स्वर्णज्योति दिखाई देगी. आनन्दकी ज्योति प्रकट होती दिखाई देगी. उसका आनन्द तुम ले सकते हो. लेकिन कब? अगर तुम यों मानो कि यह मुझे खा रहा है जिसे मैं खा रहा हूं तो बादमें सुख-दुःख प्रकट होगा. "ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे" यह भाव तुम्हारेमें जागेगा तो आनन्द प्रकट होगा क्योंकि लीला प्रारम्भ हो गई.

१६३. सर्वोत्तमजीमें यज्ञभोक्ता यज्ञकर्ता महाप्रभुजी हैं. अग्नि ब्रह्म हवि आहुति देनेवाला सब कुछ ब्रह्म है. आहुति पहुंचेगी किसे? ब्रह्मको ही. सब कुछ ब्रह्मात्मक. जब ऐसा बोध तुम्हें हो तब तुम्हें लीलाबोध होगा.

१६४. यह आनन्द जहां प्रकट होता है वहीं भक्ति प्रकट होती है. आनन्दकी मीमांसा करोगे तो भक्तिमीमांसा लीलामीमांसा उसके भीतर रही हुई है.

१६५. आनन्दका एक पहलू दृश्यका है वह लीला है. आनन्दका दूसरा पहलू दृष्टिका है वह भक्ति है. आनन्द ही अपनेको दृश्य एवं दृष्टि में बांधता है अर्थात् लीला एवं भक्ति में बांधता है.

१६६. भक्त कहता है "दर्शन दो घनश्याम नाथ मोरी अंखियां प्यासी"

दर्शन क्यों नहीं देते? कबीर ज्ञानमार्गका पथिक है अतएव कहता है "पानी बिच मीन पियासी, मोहे सुन सुन आवे हांसी" जबकि भक्तको हंसी नहीं आती. भक्तिमार्गके पथिकको तो यह भाव जागता है **"यच्च दुःखं यशोदाया नंदादीनां च गोकुले"** मेरे हृदयमें ऐसा भाव कब जागेगा कि मैं पुकारूं कि तू कहां है? मैने तुझे सर्वस्व समर्पण किया है तो तू मेरे घर क्यों प्रकट नहीं होता?

१६७. परमात्मा तो सर्वत्र है. लेकिन प्रश्न यह है कि तुम उसे कहां ढूंढना चाहते हो?

१६८. घरमें पुकारो तो घरमें लीला प्रारम्भ हो जायगी. हृदयमें पुकारो तो हृदयमें लीला प्रारम्भ हो जायगी. मंगलाचरण पाठमें है कि **"नमामि हृदये शेषे"** इस हृदयमें सहस्र लीलाओंके साथ तुम्हारा परमात्मा बैठा है.

१६९. ढूंढनेवाला और छुपनेवाला दोनों ही ब्रह्म हैं. ऐसा होते हुये भी खोजने और छुपनेकी लीला चलती हो तो भक्ति प्रकट हो गई. जब इस लीलामें अरुचि आये अथवा ज्ञान प्रकट हो जाये "पानी बिच मीन पियासी..." तो महाप्रभुजी कहते हैं कि जाओ ज्ञानमार्गमें. यह तो लीलामार्ग है. लीलाका आनन्द ले सकते हो तो भक्ति है और भक्तिके लिये लीला है.

१७०. ऐसा भी नहीं मानना चाहिये कि परमात्माको तुम्हारी भक्तिकी गरज नहीं है. लीला भी भक्ति मांगती है. इश्ककी आग ही ऐसी है कि दोनों ओर लगती है. ऐसा नहीं है कि परमात्मा नहीं मानता. गालिब कहता है "जो आशिकके दिलमें इश्ककी आग लगती है तो माशूकके दिलमें भी लगती ही है."

१७१. जबलपुरमें भगवान् रजनीशके आश्रमके बाहर एक स्लोगन् पढ़ा था "क्या परमात्माको तुम चापलूसी पसन्द करनेवाला साहिब समझते हो? किस कारण गुणगान करते हो?" यह बात ठीक है परन्तु ज्ञानमार्गमें यह बात स्फुरायमान होती है. पुत्रको जब अपनी मांके प्रति आदरभाव नहीं रहता तो उसे ऐसा लगता है कि यह मेरे बापकी लुगाई है. परन्तु जब आनन्द उमड़े तो बापकी रखैल भी मां लगती है. मुद्दा इतना है कि तुम्हें क्या स्फुरायमान हो रहा है!

१७२. परमात्मा जब भक्तिका आनन्द लेना चाहता है तो लीलाको प्रकट करता है. और जब लीलाका आनन्द लेना चाहता है तो भक्तोंको प्रकट करता है. बादमें ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे.

१७३. जब इस बातको समझ लोगे तब ही भक्ति प्रवर्धित होगी. अन्यथा कर्म ज्ञान वैराग्य योग संन्यास प्रवर्धित होंगे.

१७४. भक्ति प्रवर्धित होनेकी एक शर्त है, लीलाके लिये भक्ति तथा भक्तिके लिये लीला. जब लीला एवं भक्तिके बीच तन्मयता सिद्ध होगी तब ही भक्ति प्रवर्धित होगी.

१७५. लीलाको आगे बढ़ना हो तो उसे भक्तिका सहारा चाहिये. भक्त न हो तो भगवान् किसके साथ लीला करेंगे? प्रभु सर्वसमर्थ होते हुये भी उनकी लीलाको माननेवाला कोई न हो तो फिर परमात्मा भी 'लीला' कर जायेगा. (अर्थात् जगत्में प्रकट लीलाको तिरोहित करके नित्यलीलामें बिराजमान हो जायेगा).

१७६. बहुत बार भक्तिसे भोग नहीं धरते. व्यापारिक भोग धरते हैं.

व्यापारिक फूलमंडली करते हैं (फूल दर्शनार्थियोंकी ओर और डांडी प्रभुकी तरफ), तब भगवान् आसुरव्यामोहलीला करते हैं.

१७७. शुद्ध अद्वैतमें भी जब भगवान्-भक्तका ऐच्छिक द्वैत प्रकट हुआ तो तुरन्त लीला प्रकट हो गई.

१७८. महाप्रभुजीका सुंदर श्लोक है **''कालमोक्षप्रदो द्विष्टः स्वामी सर्वसुखावहः''** जिसे परमात्माके प्रति द्वेष है उसे परमात्मा कालमें मुक्ति देता है. महाप्रभुजीकी आज्ञा है कि जब तुम प्रभुसे बहिर्मुख हो जाओगे तो कालका प्रवाह तुम्हें बहा ले जायेगा. जब तुम अपनेको जघन्य कोटिका अधिकारी मानोगे कि हमारा सेव्य परार्थ है तब काल तुम्हारा भक्षण कर लेगा.

१७९. दूसरी एक लीला और है कि तुम कहते हो कि आप तो मेरे स्वामी हो. तब तो वह सर्वसुखावह हो जायेगा. लेकिन एक बार उसे स्वामी मानो तो सही. वह तुम्हें अपना मान कर लड्डू, मठड़ी दे देगा. तुमको धनवानोंकी चापलूसी करनेकी गरज नहीं रहेगी.

१८०. परन्तु तुमको ऐसा लगता हो कि यह क्या देगा? देनेवाले तो दर्शनार्थी हैं. तो बादमें यह दुःखद हो जायेगा. वह तुम्हारे लिये अत्यन्त दुःख एवं दुःखोंका गुणाकार बन जायेगा. तुम्हारी मालकियतको छुड़ा कर उसे सार्वजनिक ट्रस्ट्में बदल देगा. उसमें तुम पुजारीकी हैसियतसे रहोगे और कभी उस पुजारीपनसे भी भगा देगा. और तुम्हारी वह स्थिति होगी कि दुविधामें दोनों गये, माया मिली न राम.

१८१. **''दीनभावाद् दुःखदश्च केवलः सकलार्थद''** अरे एक बार उसे

'केवल' मानो तो सही कि इसके सिवा यहां कुछ है ही नहीं. कौन किसीको क्या दे सकता है? जो कुछ तुम्हें मिल रहा है वह तो परमात्मा ही दे सकता है अन्य कोई किसीको कुछ नहीं दे सकता.

१८२. नाखुदा (नाविक)को खुदा जो कहते हो, डूब जाओ खुदा खुदा न करो. जो तुम्हें मंदिरके प.भ. मनोरथी ही खुदा लगते हैं तो डूब मरो.

१८३. मुसलमानोंकी तरह पुकारो 'लाईलाह इल्लिलाह' खुदाके सिवाय यहां कोई है ही नहीं. एक बात इतना मानो कि कृष्णके सिवाय यहां कोई है ही नहीं, **''कृष्णएव गतिर्मम''** तो वह सकलार्थद बन जायेगा!

१८४. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं **''मितो योगप्रदः''** जो तुमको जाननेकी इच्छा है तो वह तुमको सकल योगकी सिद्धि प्रदान कर देगा. लेकिन तुम उसे ऐसे नहीं जान सकते. तुम यम नियम आसन प्रत्याहार ध्यान धारणा में रह जाओगे और वह तो अष्टांगयोग प्रदान कर देगा.

१८५. **''भिन्नो मृत्युपदः स्मृतः''** तुमको लगता है कि मैं तो द्वैतवादी हूं. हम परमात्मासे अलग हैं अथवा तुम परमात्माके स्वरूपमें भेद ड़ालते हो कि यह तो सखड़ीके ठाकुरजी, यह तो अनसखड़ीके ठाकुरजी, यह तो हवेलीके ठाकुरजी, यह तो चालू खातेके ठाकुरजी. तो परमात्मा मृत्युपद लीला करेगा. यह तो मार ही ड़ालेगे अर्थात् तो अपन् मर ही रहे हैं!

१८६. **''यथा स्थितो ज्ञानदश्च''** अर्थात् यह जैसा है वैसा. जैसा

महाप्रभुजीने वर्णन किया है. "**तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा**". जो जैसी रीतिसे तुम्हारे माथेपर बिराजा है, तुम्हारे ऊपर कृपा करके उसे उसी प्रकार अंगीकार कर लोगे तो वह ज्ञानप्रद हो जायेगा.

१८७. जब तुम कहोगे "अनत न जैये पिय रहिये मेरे ही महल. शैया सामग्री वसन आभूषण सब विधि कर राखूंगी टहल" तो यह तो बहुत चतुर बिहारी है. बादमें यह कहेगा कि तेरे सिवा मुझे कोई अच्छा ही नहीं लगता. तू भोग धरेगा तो मैं आरोगूंगा. तू पोढायेगा तो मैं पौढूंगा. तू जगायेगा तो मैं जागूंगा और इसका एक ही कारण है कि तुमको यथास्थित ज्ञान हो गया है कि अब तुमको किसीकी गरज नहीं है. ऐसा ज्ञान अर्थात् माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ़ सर्वतोधिक स्नेह "**स्नेहाद् वश्यो भवेद् ध्रुवम्**" होगा. कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुं समर्थ भी बना रहेगा तुम्हारे आधीन पराधीन!

१८८. होगा यह गोलोकमें, होगा कई भेदोंके वैभवोंमें, लेकिन हमारे घर पधारा है तो यह तो पूर्णपुरुषोत्तम ही पधारा है. वह किसी गुरुभावसे नहीं बिराजता. मैं भले ही मर्यादी न होऊं तो उससे श्रीठाकुरजीकी कोई वोल्टेज् नहीं घट जाती. मैं सखड़ीभोग धरता हूं तो उससे कोई श्रीठाकुरजीकी वोल्टेज् बढ़ नहीं जाती. अगर मैं मिश्री भोग धरता हूं तो उससे श्रीठाकुरजीकी वोल्टेज् घट नहीं जाती. यह ज्ञान तुम्हें अच्छी तरहसे हो जायेगा. परन्तु वास्तवमें एक बार तुम उसे स्नेहसे देखो तो सही!

१८९. महाप्रभुजी कहते हैं कि "**पुष्टिः स्वार्था, परार्था तु भक्तिः**" कितने मीठे शब्द हैं. मुंहमें मठढ़ीका स्वाद आ जाता है!! 'स्व' कौन? 'स्व' जीव. पुष्टि तो जीवके लिये करते हैं. उन्हें मठढ़ी-पेड़ेकी भूख नहीं है. हम भ्रमणामें हैं कि जो नेग बांधा है उसे हटाऊंगा तो वह भूखा रह जायेगा.

१९०. मैंने किशनगढ़की हवेलीमें भेंट लेना बंद किया तो लोग कहने लगे कि आपने तो ठाकुरजीके पेटपर पट्टी बांध दी है. भेंट नहीं लोगे तो मठढ़ी कैसे भोग धरोगे? एक प.भ.ने मुझे कहा कि श्रीसुरेशबाबाने तो मंदिरका मॅनेजमेंट् ही बिगाड़ दिया. मेवा पेड़ा के कोई प्रसाद होता है? हम इतनी दूरसे आते हैं तो कमसे कम मठढ़ीका प्रसाद तो चाहिये ना!! तब मुझे ख्याल आया कि अपने मार्गमें मठढ़ीका कितना असाधारण महत्त्व है! जित देखूं तित मठढ़ी मईरी "मठढ़ी धरी छे, मनोरथीने रीझववा, दुष्ट प्रवाहिओने पुष्टिमां संडोववा".

१९१. किस शास्त्रमें लिखा है कि प्रभुको मठढ़ी अच्छी लगती है. तुम्हें मठढ़ी अच्छी लगती है और तुमने नियम लिया है कि "**असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्**". इस कारण प्रभु कहते हैं कि तुमको मठढ़ी अच्छी लगती है और तुम मुझे उसे प्रेमसे धरते हो तो मैं उसे आरोगनेके लिये तैयार हूं. हमको ढोकला-फाफड़े अच्छे लगते हैं, इससे वह ढोकला भी आरोगता है. वह तो पत्र पुष्प फल जल कुछ भी, परन्तु, भक्तिसे धरे हुएको आरागनेके लिये तैयार है.

१९२. हम महाप्रभुजीके वंशज दक्षिण भारतीय हैं. हमारे यहां वार-त्यौहार पांच प्रकारके भात करनेका रिवाज है. खट्टा भात, शिखरन भात, बड़ी भात, दही भात. ठाकुरजी तो व्रजके हैं और उनके यहां पांच भातकी पद्धति कहां है? परन्तु ठाकुरजी गोस्वामियोंके यहां पधारे हैं तो उस कारण वह हमारे पांच भात आरोगते हैं.

१९३. उन्हें तो शबरीके झूठे बेर भी अच्छे लगते हैं. विदुरजीकी

पत्नीके यहां केलेके छिलके भी अच्छे लगते है. तो क्या हमारे पांच भात अच्छे नहीं लगेंगे? उन्होंने तो प्रतिज्ञा ली है कि भक्तिसे जो कुछ भी मुझे धरोगे तो वह मैं आरोगूंगो.

१९४. **''परार्था तु भक्तिः''** पर = परमात्माके लिये भक्ति है. यह भक्ति जब तुम स्वार्थके लिये करते हो तो तब भक्ति नहीं नौटंकी होती है. और पुष्टि भी (जीवके बदले) अपने लिये करें तो वह क्रूर हो गया. आनन्द नहीं रह गया. वह किसी सुख-दुःखके व्यवहारमें शामिल हो गया.

१९५. उपनिषद् कहता है **''आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति. तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म''**

१९६. यह आनन्द ही पुष्टिरूपमें जीवको देनेके लिये प्रकट हुआ है. जीवको मिली उस पुष्टिको उसे भक्तिरूपमें परमात्माको वापिस देनी है. भक्ति परार्था है.

१९७. यह पर = श्रेष्ठ. अथवा दूसरा. यह परपुरुष नहीं है. गोपी परनारी नहीं थी. यह तो गोपियोंमें, उनके पुत्र पति गाय सर्वके भीतर बैठा है. वही परमात्मा नंदात्मजके रूपमें प्रकट हुआ है. सभी देहधारियोंमें वही तो है. वही परमात्मा पुष्टि करनेके लिये गोकुलमें प्रकट हुआ है.

१९८. हम गोस्वामी बालक पुरुषोत्तम नहीं हैं और न ही है हममें पुरुषोत्तम होनेके कोई सींग अथवा पूंछ!!

१९९. श्रेष्ठ नारी गोपीजन ही थीं. उन्होंने आत्मसमर्पण किया था.

इस आत्मसमर्पणका भाव समझो. जैसे एक पत्थर कलाकारको समर्पित हो जाता है. ''तू मुझे घड़'' जो समर्पित हो जाता है वह पत्थरकी भांति एकदम निश्चेष्ट हो जाता है. तत्पश्चात् कलाकार मनचाही कलाकृति घड़ता है.

२००. ऐसे समर्पणके भावको जगानेके लिये महाप्रभुजीने 'सिद्धान्तरहस्य'के बाद 'नवरत्न'का उपदेश दिया. तुम चिंता करके किसी प्रकारकी खींचतान प्रभुके साथ नहीं करो. एकदम पत्थरकी तरह हो जाओ. तुम उसके लिये हो जाओ. जिस प्रकार उसे गढ़ना हो उसे गढ़ने दो. इस समर्पणके कारण तुम्हारेमें भक्ति प्रकट हो जायगी.

२०१. जीवात्माको परमात्मामें समर्पित हो जाना है. इसमें मेरा कुछ भी नहीं है. तोड़ो फेंको रखो करो कुछ भी. दिल हमारा भी क्या खिलौना है. खेलना है तो खेल, फेंकना है तो फेंक, तोड़ना है तो तोड़. ऐसा निर्मल हृदय जब तुम्हारा बन जाये तो प्रारम्भ होगी **''यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते.''**

२०२. अब लीलाका भेद देखते हैं

(१) सृष्टिरूपा = भूतल (अखिल ब्रह्माण्ड)को प्रकट करनेकी लीला.

(२) भूतलपर प्रकट हो कर जो लीला करते हैं वह.

(३) शुद्ध लीला = नित्यलीला. इस लीलाको शुद्ध लीला इसलिये कहते हैं कि इस लीलासे कोई दूसरी लीला अशुद्ध नहीं होती. संस्कृतमें शुद्धका तात्पर्य 'केवल' परक होता है.

२०३. निबंधके मंगलाचरणकी कारिकाके विवेचनमें महाप्रभुजीने कहा है कि **''नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे''** उसमें आप आज्ञा

करते हैं कि यह अद्‍भुतकर्मा कृष्ण है (१) जो क्रीड़ा करते हैं (२) जो जगत बन कर क्रीड़ा करते हैं (३) जिनके कारण जगत क्रीड़ा करता है. ऐसे त्रिविध क्रीड़ा करनेवाले कृष्णको मैं नमन करता हूं.

२०४. अभी एक क्रीड़ा और है. जो निबंधमें वर्णन नहीं करी है. वह अतिशय पृथक लीला है. उसका गूढ़ संकेत महाप्रभुजीने केवल इतना ही किया है **"स्नेहाद् वश्यो भवेद् ध्रुवम्"** जो कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुं समर्थ है वह तुम्हारे सामने सर्वथा असमर्थ बन जाता है. तुम जब अपना स्नेह उसे समर्पितभावसे देते हो तब प्रभु भी तुम्हें समर्पित हो जाते हैं. उसके बाद जो लीला वे करते हैं वह इतनी व्यक्तिगत होती है कि उसका सैद्धान्तिक विवेचन नहीं हो सकता!

२०५. यह होते हुये भी उसका भाव अगर समझना हो तो वैष्णवोंकी वार्तामें एक वार्ता अतिशय सुंदर है. एक वैष्णवको परदेस जाना था. उसने अपने श्रीबालकृष्णलाल एक मांजीको पधरा दिये. उन मांजीने कभी बालकृष्णलालके दर्शन नहीं किये थे. अतएव उनको लगा कि श्रीठाकुरजी ठण्डमें सिकुड़ गये हैं. उसने श्रीबालकृष्णलालकी तेल मालिश प्रारम्भ की कि आप जल्दीसे स्वस्थ हो जाओ. प्रभुको उनके भावको विचार कर श्रीमदनमोहनका स्वरूप धारण करना पड़ा!

२०६. किस भक्तके साथ भगवान् किस रीतिसे उसके वश हो जाते हैं, उसका कोई शास्त्रीय विवेचन तो नहीं हो सकता. स्नेहसे तो तुम उसे वश कर सकते हो. यह अतिशय गूढ़ तत्त्व है. भक्त और भगवान् की यह अतिशय व्यक्तिगत लीला है. उस व्यक्तिगत लीलाको व्यक्तिगत ही रखना ठीक होता

है. इसी कारण महाप्रभुजीने उसे गूढ़ तत्त्व कह कर इंगित किया है.

२०७. भक्तमें ऐसा भाव उदित होना कि प्रभुको ठण्ड लग रही है वह प्रभुकी शुद्धपुष्टि है. अरे सामान्य योगीको भी ठण्ड नहीं लगती तो योगेश्वरको लग सकती है क्या? हां लगती है. लेकिन कब? जब प्रभु किसीके ऊपर ऐसी पुष्टि करें और उस जीवको लगे कि प्रभुको ठण्ड भी लगती है.

२०८. शास्त्रमें है कि नाटक (जो कथारसको प्रकट करता है)के रसका आनन्द कब लिया जा सकता है? उसके लिये एक प्रक्रिया बताई गई है. उसका नाम है 'साधारणीकरण' अर्थात्? हमें मात्र भावका ही स्फुरण हो, देश काल अन्य किसी वस्तुका नहीं.

२०९. उदाहरणार्थ सीताको रावण हर कर ले गया. उसमें कालका स्फुरण आये तो ऐसा लगे, जाने दो ना! यह तो बहुत पहलेकी बात है. रावण सीताको हर कर ले गया तो इसमें अपनेको क्या लेना-देना? यह तो तुमने अपनी बुद्धिमत्ताका परिचय दिया. भावका परिचय नहीं दिया. बुद्धि वस्तु ही ऐसी है. लेकिन सहृदय व्यक्तिको तो रोना आयेगा ही. रामकी बात तो जाने दो. लौकिककी भी कोई ऐसी बात हो तो रोना आ ही जायेगा.

२१०. उसी प्रकार ७०० वर्ष पहलेकी जर्मनीके ड्रेक्युलाकी कथा भी ऐसी भयंकर है कि पढ़ते ही डर लग जाये.

२११. कथाकी तल्लीनता ही ऐसी होती है कि उस समय बुद्धिका

प्रयोग करें तो कथाका रस ही प्रकट नहीं हो पायेगा.

२१२. इसलिये शास्त्र कहता है "**प्रतिमासु अल्पबुद्धिनां योगीनां हृदये हरि:**" प्रतिमामें जो साधारण बुद्धिका प्रयोग करो तो प्रतिमामेंसे प्रकट होता दिव्यभाव तुम्हारे हृदयमें स्थापित हो जायेगा.

२१३. कथाका सार समझो. सम्यक बुद्धिका ही प्रयोग करो. बहुत बुद्धिका नहीं और बिल्कुल नाबुद्धिका भी नहीं; तब ही कथारस प्रकट होगा अन्यथा नहीं.

२१४. प्रतिमा यह तुम्हारे लिये साकार हुआ रूप है. इस प्रतिमामें तुम्हारा मन साकार हो जाये कि कैसी सुन्दर छटा है! कैसे नेत्र हैं! लेकिन यह तो पत्थर है परमात्मा कहां है? ऐसी अति बुद्धिका प्रयोग करोगे तो परमात्माका दर्शन नहीं होगा. और ऐसी छोटी बुद्धिका प्रयोग करोगे तो भी नहीं होंगे कि नेग भोग राग मेंड मरजाद में ही पुरुषोत्तम बिराजता है, वह अपने घरमें कैसे बिराज सकता है!

२१५. ४० वर्षोंसे मंदिरमें दर्शन करनेवालेको पूछो कि बालकृष्णलाल जन्माष्टमीके दिन कितने शृंगार मस्तक पर धराते हैं? चाहे वह कितनी दूरबीनसे दर्शन करे तो भी पता नहीं चलेगा कि प्रभुने २७ शृंगार धारण किये हैं. इसलिये तुम गलत भ्रमणामें हो कि हम अगर दर्शन नहीं करेंगे तो कैसे पता चलेगा कि शृंगार कैसे धराते हैं!!

२१६. इसी प्रकार ४०-५० सालोंसे दर्शन करनेवालोंसे पूछा जाय कि अन्नकूटमें सामग्री सजनेका क्या क्रम है? इसका पता ही नहीं चलेगा. अगर तुम खुद धरोगे तो ही पता चलेगा.

२१७. हमारे तातजी महाराजने अलग-अलग सामग्रीमें रखनेके लिये अलग-अलग चम्मच सिद्ध करवाये थे. उन्होंने प्रेमसे जिस रीतिको प्रकट किया उसका विचार करते ही रोमांच हो जाता है. लेकिन बालकपनेमें मुझे यह चम्मच पधराते समय मुसीबत लगती थी. बादमें महाप्रभुजीके सिद्धान्त समझने पर लगा कि यह प्रीति भी है और रीति भी है. अलग-अलग चम्मचोंकी श्रीठाकुरजीको क्या जरूरत? इसकी समझ तो अपने ऊपर पुष्टि करें तो ही आयेगी.

२१८. अपनी आवश्यकताकी, अपनी सुख-सुविधाकी जितनी गरज जरूरत हमको है, उतनी ही श्रीठाकुरजीको भी. प्रभुको जब हम ऐसे भावोंके साथ मानेंगे तो यह प्रभुके साथ अपना साधारणीकरण है. लेकिन ऐसा होते हुये भी प्रभुको इसकी गरज है ऐसा समझनेकी भूल मत करना. केवल हमारे संबंधसे प्रभुको इसकी गरज है, ऐसा माननेकी जरूरत है.

२१९. हम हमारे घरमें प्रभुको लाड़ लड़ाते हैं. अतएव जो चम्मच प्रभुको धरे वह हमारे वशीभूत हो कर नहीं स्वीकारेंगे तो वह मेरे प्रभु कैसे माने जायेंगे? ऐसे प्रभुको मानो तो तुम्हारे ऊपर पुष्टि प्रकट हो गयी, ऐसा कहा जायेगा. तुम पुष्टिके कारण प्रभुसे अपना साधारणीकरण करते हो, जैसे तुम प्रभुको मानते हो वैसा ही प्रभु तुमको मानते हैं.

२२०. प्रभुका माहात्म्य इस प्रकार समझो कि प्रभुको गरज नहीं है. परन्तु प्रभु हमारे घर बिराजते हैं तो हमारी जो आवश्यकता, हमारी जो रुचि, हमारी भोग धरनेकी सामर्थ्य को अगर नहीं पहचानें तो वह 'पुष्टिप्रभु' किस प्रकार कहलायेंगे?

२२१. प्रभुकी मर्यादा जो हमारे ऊपर थोपनेमें आये कि "मुझे छप्पनभोग

नहीं धरोगे तो तुम्हारा सत्यानाश हो जायेगा'' तो वह मर्यादा भी नहीं प्रवाही प्रभु हो गये.

२२२. प्रभुका माहात्म्य जानो **''किम् आसनं ते गरुडासनाय''** जिसके पास गरुड़ जैसा आसन हो, उसको तुम और क्या आसन दे सकते हो? कौस्तुभमणि धारण करनेवालेको तुम क्या आभूषण धरा सकते हो? भीख मांगकर करोड़ों रुपये इकट्ठे करके उसके सुखके लिये मनोरथ करो लेकिन लक्ष्मीके नाथके लिये करोड़ रुपयेकी क्या कीमत? सागरमें एक बूंद जितनी भी नहीं.

२२३. **''स्वभावस्य अन्यथाभावो न वै शक्य: कथंचन, अत: त्रिविधजीवेषु त्रिविधा भगवत्कृति:''** जीव अपना स्वभाव बदल नहीं सकता. जिसका स्वभाव नौटंकी करनेका हो वह तो भक्ति ज्ञान कर्म सबकी ही नौटंकी खड़ी कर देगा. और जिसका स्वभाव भक्तिमय होगा तो वह नौटंकीमें भी भक्ति खोज लेगा. इन सब चालू हवेलियोंमें प्राचीन भगवदीयोंको उनमें किसी प्रकारका कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं मिला तब ऐसी भावना चला दी कि यह सब हवेली नंदालय हैं, दर्शनार्थी गोपीजन हैं. महाराज यशोदाजी हैं. ऐसी भावना कर ली!

२२४. प्रभु तो **''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्''** इस कारण तुम्हारे धंधेके रूपमें भी पधारते हैं, तुम्हारी भक्तिमय भावना हो तो भजनीयरूपमें प्रकट हो जाते हैं. और ज्ञानका स्वभाव हो तो ज्ञेयस्वरूपमें प्रकट हो जाते हैं. और स्नेहमय स्वभावसे वह तुम्हारे वश भी हो जाते हैं.

२२५. श्रीमथुराधीश बहुत बड़े स्वरूपमें प्रकट हुए तब महाप्रभुजीने प्रार्थना करी कि छोटे स्वरूपमें पधारो. महाप्रभुजीका भाव था कि

जब-तक मेरी गोदीमें न बैठें तब-तक वह मेरे ठाकुरजी कैसे कहलायें? तब श्रीमथुराधीशने महाप्रभुजीके भावके साथ साधारणीकरण स्वीकार किया और आप छोटे हो गये.

२२६. प्रभु ऐसे विविधरूप धारण कर सकते हैं. परन्तु जीव तो ऐसे विविध रूप धारण नहीं कर सकता, कहां-तक? जहां-तक जीवमें भक्तिकी ऐसी निश्चल तन्मयता नहीं आ जाती और वह कब आयेगी? जब प्रभु अपने ऊपर पुष्टि प्रकट करें तब. इसी कारण महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि पुष्टि स्वार्था. पुष्टि तुम्हारे लिये करते हैं जिससे तुम्हें लगे कि मेरे प्रभुको मेरे भावानुसार होनेकी आवश्यकता होनी चाहिये.

२२७. और पुष्टि जब करेंगे तब वह तुम्हारा बीजभाव बन जायेगा. उस बीजभावानुसार तुम सेव्य प्रभुको मानना प्रारम्भ करोगे वैसे-वैसे तुम्हारेमें भक्तिके अंकुर फूटने लगेंगे, वैसे-वैसे ही तुम्हारेमें दिव्यता प्रगट होने लगेगी. अर्थात् ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य सब कुछ तुम्हारेमें प्रकट हो जायेगा.

२२८. जब तुममें भक्ति, अंकुरित पल्लवित पुष्पित फलित हो जायेगी तब तुम्हें नौटंकी करनेकी कोई जरूरत नहीं होगी. हृदयमें भगवान् प्रकट हो जायेंगे तो तुममें भक्तिभावकी नौटंकी कभी हो ही नहीं सकेगी.

२२९. जितना ज्यादा रोना आये उतना ज्यादा नाटक अच्छा. जितना ज्यादा डर लगे उतनी वार्ता अच्छी. नाटक हो, वार्ता हो अथवा लीला हो, नियामक तत्त्व परस्पर साधारणीकरण ही है. प्रभु तुम्हारे हो जायें और तुम प्रभुके हो जाओ. जब यह सध जाये तब ही तो रसोत्पत्ति होगी. और जब-तक ऐसा

सधेगा नहीं, तब-तक तो रस निकल ही जायेगा.

२३०. पुष्टिके कारण परमात्मासे तुम्हारा साधारणीकरण होता है. और भक्तिके कारण परमात्माका तुमसे साधारणीकरण होता है. किस प्रकार? देखो सेवाकी प्रक्रिया. तुम ठाकुरजीको जगाते हो और यशोदाजीका पद गाते हो ''जागिये गोपाललाल जननी बलि जाई. उठो लाल प्रात भयो रजनीको तिमिर गयो खेलत सब ग्वाल बाल मोहना कन्हाई.. सखा सब चारत धेनु तुम बिना न बाजे वेणु उठो लाल तजो सेज सुन्दर सुखदाई. मुखते पट दूर कियो यशोदाको दरस दियो और दधि मांग लियो विविध रस मिठाई.'' और ठाकुरजी बहुत बुद्धिका प्रयोग करें कि बम्बईमें कहां जगह है गायें चरानेकी तो! सब रसाभास हो गया.

२३१. **''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्''** भगवान् भी अल्प बुद्धिका प्रयोग करते हैं. परमात्मा जो भावप्रयोग करता है उसे 'पुष्टि' कहते हैं और जीव जो भावप्रयोग करता है उसे 'भक्ति' कहते हैं. यह सम्बन्धस्थापनकी क्रिया है. दोनों मिल कर पुष्टिभाव जब सिद्ध होता है बीजकी तरह, तब तुम्हारे घरमें लीला प्रगट हो जाती है.

२३२. एक-दूसरेके साधारणीकरणकी प्रक्रिया. यह बहुत ही मधुर कथा है. उसके कारण प्रत्येक घरमें एक गूढ़ भगवल्लीला प्रगट होती है. जिसका वर्णन किसी भी शास्त्रमें नहीं मिलता. यह तो तुम्हारा हृदय जानता है और घरका ठाकुर जानता है कि क्या लीला प्रकट हो रही है!

२३३. अपने बच्चेका कैसा स्वभाव है, कब भूख लगती है और उसे क्या चाहिये यह तो उसकी मां ही जानती है. उसी

प्रकार तुम्हारे ठाकुरजीको क्या चाहिये यह तो तुम ही बता सकते हो. कोई भी षट्शास्त्र पढ़ा पंडित इसे नहीं बता सकता.

२३४. किशनगढ़ दरबारके माथे बिराजते ठाकुरजीको ऐसी आदत थी कि एक-एक शृंगार धराते समय वह उनको दीखना चाहिये. अतएव वह अपने गलेमें आरसी पहनते थे. यह तो इनकी आपसकी लीला थी. ऐसा किसी रीतिकी पुस्तकमें नहीं लिखा.

२३५. इसी प्रकार प्रत्येक गोस्वामी बालकके घरमें भी कोई न कोई सेवाकी अलग रीति होती है. वह तो स्वामी और सेवक को ही मालूम है. प्रत्येक अपने ठाकुरजीको किस तरह रिझाता है और उसके रिझानेकी पद्धति क्या है यह तो उससे ही मालूम पड़ सकता है जिसके माथे श्रीठाकुरजी बिराजते हैं. यह सब साधारणीकरणकी प्रक्रिया ही तो है.

२३६. जब इस प्रक्रियामें भगवान् पुष्टिभाव प्रगट करते हैं तो वह 'बीजभाव' कहनेमें आता है. **''बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नापि नश्यति''**. यह बीजभाव कभी भी नष्ट नहीं होता क्योंकि वह परमात्माके आधीन है. उसे तुम नष्ट नहीं कर सकते.

२३७. जो लोग कहते हैं कि परमात्माने तो हमें जघन्य बनाया है तो वह सच्चे तो हैं ही. इसे समझो कि यह भाव किस कारण उनमें उदित हो रहा है? जब परमात्मा ऐसी इच्छा करता है कि तुम द्वेष करो तो वह तुम्हें कालाधीन करेगा. तुम स्नेह करो तो वह तुम्हारे माथे पधारेगा. तुम उसे बेचना चाहो तो वह तुम्हारी दुकानपर बिकाउ माल बन जायेगा. परन्तु तब पुष्टिका भाव खण्डित हो कर तुम्हारे भीतर बेचनेका भाव हृदयमें उभरेगा.

२३८. भक्तिका बीजभाव तथा पुष्टिका बीजभाव किस प्रकार दृढ़ होगा? जब तुम घरमें रह कर "**बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मत: अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभि:**" अपने माथे बिराजे हुये ठाकुरजीका कुछ न कुछ पूजन करना चाहिये. वह ठाकुर तुम्हारे घरमें बिराजा हुआ है इसलिये पूजितताका भाव तुम्हें छोड़ नहीं देना. तुम्हारे घरके ठाकुरका अप्रतिम महत्त्व तुम्हें समझना पड़ेगा.

२३९. खाली सेवा ही नहीं करनी. पूजनके भावसे सेवा करनी है. पूजितताका भाव कब रहेगा? जब माहात्म्यको भूल न जाओ तब. तुम्हारे घरमें बिराजता है इसलिये तुम उसे कम वॉल्टेज्का न समझो तब.

२४०. हवेलीमें तो नेग भोग राग और अपरस के आडम्बरमें ही बिराजता है. इसलिये उसमें माहात्म्य है; और हमारे यहां तो चालू खाताके ठाकुरजी हैं, ऐसा नहीं है, कदापि नहीं है. तुम्हारे घरमें भी साक्षात् वैकुण्ठाधिपति श्रीपुरुषोत्तम ही बिराज रहे हैं.

२४१. महाप्रभुजी कहते हैं कि कोई डूबता हो तब कोई बचानेके लिये रस्सी फैंकते हैं क्योंकि वह अपना नहीं है. लेकिन जब कोई अपना डूबता हो तो रस्सी ढूंढनेके लिये नहीं जाते खुद ही पानीमें कूद पड़ते हैं. उसी प्रकार इस गृह रूपी कुएंमें पुष्टिजीव डूब रहा था. उसे बचानेके लिये प्रभु स्वयं उस अंधकूपमें कूद पड़े हैं. अर्थात् वह तुम्हारे माथे बिराज गये हैं. अब तुम कहो कि हमारा उद्धार तो हवेलीका ठाकुर करेगा, तो भाई डूब ही मरो!! वह नहीं करेगा उस गृह रूपी अंधकूपमेंसे उद्धार.

२४२. वह तुम्हारे घरमें आया है तुम्हें बचानेके लिये और तुम कह रहे हो कि नहीं नहीं, हमें नहीं बचना. हमें तो ज्यादा वॉल्टेज्वाले ठाकुरजीसे ही बचना है. वह अपनेको तुम्हारेमें पधरा रहा है अपनी साधारणीकरण प्रक्रियासे कि तू मेरा पुष्टिजीव है. तुम कहते हो कि हमें तुझपर विश्वास नहीं है, तुम्हारी वॉल्टेज् थोड़ी है, तुम तो चालू खातेके हो! हमारे पास अपरस कहां है? आप सखड़ीके ठाकुरजी कहां हो? तुम महाप्रभुजीकी निधि कहां हो?

२४३. मिश्रीके ठाकुरजी कि ठाकुरजीको भोग धरनेके लिये मिश्री! सखड़ीके ठाकुरजी, अनसखड़ीके ठाकुरजी. हमने ठाकुरजीका कितना निम्नीकरण कर दिया है कि उसे अगर विचारें तो ये सब लोग प्रभुको खा ही जायेंगे. महाप्रभुजीके मार्गमें ऐसे असुर कैसे घुस गये?

२४४. बहुत बार गोस्वामी बालक भी सखड़ीके ठाकुरजीकी ओर कृपादृष्टिसे देखते हैं और यह तो मिश्रीके ठाकुरजी हैं तो ठीक; यह तो चालू खाताके हैं यहां कोई माथा नमाने जैसी चीज नहीं है; कृपानाथ भी चालू खातेके ही है. इसे हम अपना पुष्टिमार्ग समझते हैं? महाप्रभुजी ऐसे पुष्टिमार्गकी बांह उठाके प्रशंसा नहीं करते.

२४५. अपने ठाकुरजीके लिये तुम पूज्यभाव रखो; यह त्रिभुवनके नायक हैं, जिनसे जगत् उत्पन्न हुआ है; जिसमें स्थित है और जिसमें लीन होनेवाला है. जो सर्वको मुक्ति देनेवाला है. ऐसे प्रभु हमारे माथे बिराज रहे हैं. ऐसा भाव अपनेमें जगाओ तो सही फिर देखो कि वह तुम्हारेमें भक्तिभाव जगाता है कि नहीं?

२४६. उसके बाद तुम्हें लगेगा कि यह ठाकुरजी मेरे सर्वस्व हैं. इन

ठाकुरजीके सिवाय मुझे और कोई ठाकुर नहीं चाहिये.

"नंद नंदन कर घरको ठाकुर आपन व्हे रहे चेरो. यामें कहा घटेगो तेरो." इतनी सुंदर सरल प्रामाणिक बात तुम्हें क्यों समझमें नहीं आती? महाप्रभुजीकी कंठी गलेमें डाल कर घूमते हो और इतनी निश्चल मधुर बात क्यों नहीं समझते?

२४७. जब घरके ठाकुरजीमें ऐसा भाव रखोगे कि "अखिल ब्रह्माण्डमें एक तू श्रीहरि". इस माहात्म्यज्ञानके साथ तुम सेवाकी रीति जमानी चालू करो. बादमें तुम श्रवण करो कि तुम्हारे घर बिराजते ठाकुरकी क्या क्या लीलायें हैं. सेवाकी रीतिमें इन लीलाओंके ही पद तो गाते हैं. इन पदोंके भावसे तुम ठाकुरजीको जगाओ, स्नान कराओ, शृंगारो, दर्पण दिखाओ, आरोगाओ, पौढ़ाओ.

२४८. माखन धरो, यह जरूरी नहीं है. तुम्हारे घरमें दाल भात रोटी इत्यादि जो हो वह भोग धरो. विधि-निषेध इन सबका नहीं है. तुम जो खाते हो वह धरो. रीति तो यह है कि "**असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्**".

२४९. पद्मनाभदासजी चने धरतें तब किसी ढेरीको मठड़ी कहतें तो किसीको लड्डू कहते थे. और उस प्रसादमें वही स्वाद आता था तो किस प्रकार? यह तो पुष्टिभावसे धरे हुए चने थे जिन चनोंका ठाकुरजी आनन्द लेते थे.

२५०. ठाकुरजी भी समझते हैं कि यह मेरे नामपर भीखका धंधा तो नहीं करता. अखबारमें इश्तहार तो नहीं देता, दूसरेकी इसको गरज नहीं है. यह उपाय है भक्तिके प्रवर्धनका. बाकी तो धंधेके प्रवर्धनके उपाय हैं. महाप्रभुजी "**यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्**" कहते हैं, ना कि "यथा धंधा प्रवृद्धा स्यात्"की आज्ञा करते हैं.

२५१. ऐसा पूज्यभाव रख कर सेवाकी रीति निभाओ, इसकी लीलाओंका श्रवण करो. इन लीलाओंके श्रवणके लिये ही सेवामें कीर्तन द्वारा कहा गया है कि सेवा तुम करते हो और कीर्तन गाते हो गोपियोंके और यशोदाजीके.

२५२. खंडिताके कीर्तन गाओ. लेकिन खंडिता नारीत्व तुममे कहां है? ऐसी बुद्धिका प्रयोग करोगे तो भाव ही प्रकट नहीं होगा. जैसे ब्रजमें प्रभु एकके घरको छोड़ कर दूसरेके घर जाते हैं तो पहलीको खंडिता हो जाती है. उसी प्रकार हे प्रभु मेरा घर छोड़ कर दूसरेके घर जाओगे तो मेरा भाव खंडित हो जायेगा. बादमें तुम भी कह सकते हो कि "नख कहां लागे?" और तुमसे प्रसन्न होंगे कि मेरा कैसा अनन्य भक्त है कि मुझे कहीं भी जाने नहीं देता!

२५३. लेकिन जब तुम कहोगे कि तुम मिश्रीके हो. तुम जरा यहां ही बिराजो; मैं हवेलीमें दर्शन कर आऊं. तब प्रभुको तुमसे पूछना पड़ेगा कि "नख कहां लागे"? और तब तुम्हें कहना पड़ेगा कि "झापटिया लगाये नख". "नैन क्यों राते" क्यूमें खड़े ताते. ऐसी नौटंकी करोगे तो भक्ति प्रवर्धित नहीं होगी.

२५४. इसीलिये महाप्रभुजी कहते हैं कि "**बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः**" पूजा माहात्म्यज्ञान होनेके लिये; एवं श्रवण सर्वतोधिक स्नेह प्रकट हो उसके लिये. यह दोनों पहलू सधें तो सेवाकी रीति प्रीतिमें खिल उठेगी.

२५५. मुझे पहले बहुत डरा दिया गया था कि "तुम यहां जा तो रहे हो लेकिन अनपढ़ लोग तुम्हें समझेंगे नहीं!" लेकिन मुझे कहते हुए अति आनन्द हो रहा है कि मैने जो समझानेका प्रयास किया और आप लोगोंने जैसे पुष्टिभाव प्रगट किये हैं और आप उनको जो समझ रहे हो वो कदाचित् पढ़े लिखे भी न समझते हों".

२५६. साधारणीकरणकी प्रक्रियासे जब भक्ति और पुष्टि की लीला किसी घरमें घटित होनी हो, जैसी रीतिसे ब्रजमें प्रगट हुई, तो पहले भगवान्‌को पुष्टिलीला करनी पड़ेगी. अर्थात् कि जिस घरमें स्वयं बिराजना चाहते हैं उस घरकी जो कुछ मर्यादा होंगी उसे स्वीकार करके ही बिराजना होगा. ब्राह्मणके घरका ठाकुर ब्राह्मणके आचार-विचार पालेगा. उसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य शूद्र के लिये समझना. यह वर्णव्यवस्था भी सीमित समुदायमें ही थी और आज वह कितने अंशमें बची है, वह विचारणीय है. जहां वर्णव्यस्था नहीं है वहां उस घरके नियम उसे पालने होंगे जैसे ताजबीबी, अलीखान पठान, रसखान इत्यादि. यह लोग कहां वर्णव्यवस्थाके अंतर्गत थे परन्तु इनके माथे बिराजते ठाकुरने इनके यहांके आचार-विचार पाले.

२५७. गोकुलमें प्रभु प्रगटे तब गाय चराने जाते थे और मां द्वारा दी गई कामरी खो जाती थी तो रोते भी थे. "मैया मेरी कामर कोन लई. कोई कहता कि हमने तो यमुनाजीमें बहती देखी थी. कोई कहता कि फट गई." इस सर्वज्ञको भी खूब रोना आता था कि उसकी कामरी खो गई. इसमें अति बुद्धिका प्रयोग करोगे तो समझमें नहीं आयेगा. पुष्टिबुद्धिका प्रयोग करोगे तो ही समझोगे कि सर्वज्ञको भी रोना आता है, नहीं तो पुष्टिलीला किस प्रकार कहलायेगी?

२५८. यहां सूरदासजीका बहुत सुंदर पद है "मैया मोय दाऊ बहुत खिजायो. मोसों कहत मोलको लीनो तू यशुमति कब जायो.. कहा करों यह रिसके मारें खेलन हू नहीं जात. पुन पुन कहत कौन है माता कौन है तेरो तात..गोरे नंद यशोदा गोरी तू कत श्याम शरीर. चुटकी दै दै ग्वाल हंसत हैं सिखै देत बलवीर.. तू मोहीको मारन सीखी दाऊए कबहु न खीजे. मोहनकों मुख रिस समेंत लखि जसुमति मनमन रीझे.. सुनहुं कान्ह बलभद्र चवाई जन्मतहीको धूत. सूरस्याम मोहि गोधनकी सों मैं जननी तू पूत.."

कितने सुंदर शब्द हैं. यशोदा एवं कृष्ण का एक-दूसरेमें साधारणीकरण हो गया है. मांको लगे कि यह बालक मेरा और बालकको लगे यह मां मेरी. जैसे यशोदाको लगा कि यह मेरा और किसीका नहीं, उसी प्रकार जब तुम्हें लगे कि यह मेरा ठाकुर मेरा और किसीका नहीं. यह ठाकुर मेरा नहीं लेकिन ट्रस्टका ऐसा सुनते ही पुष्टि तो नदारद जानिये.

२५९. भागवतमें प्रभु कहते हैं कि यह गोपीजन मेरे सिवा किसी और को जानती ही नहीं हैं और मैं भी उनके सिवा किसी औरको नहीं जानता. इसमें बहुत बुद्धिका प्रयोग करोगे तो सोचते रह जाओगे कि सर्वज्ञ प्रभु ऐसा कैसे कह सकते हैं कि मैं इनके सिवा किसी और को नहीं जानता. यह तो झूठ कहलायेगा और झूठ बोले तो भगवान् कैसा?

२६०. इसलिये बहुत बुद्धिका प्रयोग करे बिना दर्शन करो. "नयन भर निरखो नंदकुमार. यशुमति कूख चन्द्रमा ऊग्यो" बादमें तुम्हें पता चलेगा कि वह तुम्हारे साथ कितना साधारणीकृत हुआ है.

२६१. महाप्रभुजी एक दूसरी बहुत सुंदर बात कहते हैं "**सर्वलीलाः**

पुष्टिमध्ये प्रविशन्ति इति मे मतिः'' हमको यह भ्रमणा है कि प्रभुकी लीला वह पुष्टिलीला और बाकी सब मर्यादालीला. लेकिन वैसा नहीं है. कोई भी लीला हो प्रभुकी वह पुष्टि पुष्टि और पुष्टि. परमात्मा पुष्टि न करना चाहता हो तो लीला किस प्रकार करेगा? फिर चाहे वह कैसी भी लीला हो. कंसको डरानेकी अथवा योगीजनोंको तत्त्वज्ञान देनेकी, सांदीपनी ऋषिके पास विद्योपदेश लेनेकी अथवा अर्जुनको गीतोपदेश देनेकी, युद्ध करवानेकी हो अथवा युद्धसे भाग जानेकी; लड़े तो भी पुष्टि करनेके लिये और रणछोड़राय बन कर भागे तो भी पुष्टि करनेके लिये.

२६२. अतएव महाप्रभुजी निष्कर्षरूपमें कहते हैं : **''अतः सृष्टिस्तु निखिला कृष्णार्थेति विनिश्चयः''** यह सम्पूर्ण सृष्टि कृष्णकी लीला ही है जो अपने आनन्दकी मांग कर रही है. एकविध आनन्दको अनेकविध रसोंमें मांग रही है.

२६३. **''आनन्दस्य हरेः लीला''** यह अखिल सृष्टि भगवानूने क्रीड़ाके लिये प्रकट करी है. कोई ऐसा माने कि यह मेरे लिये है, मैं कर रहा हूं (इसलिये कहा गया है कि मैं करूं मैं करूं यही अज्ञानता) वो अज्ञानता है.

२६४. पुष्टिके भी अनेक रूप हैं. अनेक रूपोंमें प्रभु मिल सकते हैं. साधनलीलाकी दृष्टिसे लगेगा कि जीव प्रभुकी ओर बढ़ रहा है. और पुष्टिलीलाकी दृष्टिसे देखोगे तो प्रभु जीवकी ओर बढ़ रहे हैं. कहां गया वह जीव जिसे मुझे खिलाना था अथवा तो जिसने मुझे खिलाना था. कहां गई मेरी मां जिसकी गोदीमें मुझे सोना था और कहां गया मेरा दोस्त जिसके गलेमें मैं बाहें डाल चलता था.

२६५. लेकिन एक बात समझ लो कि जब-तक परमात्मा तुम्हारी ओर एक डग नहीं भरता वहां-तक तुम उसकी ओर आधा डग भी नहीं भर सकते. यह अपनी पुष्टि और पुष्टिपात्रता की कथा है.

२६६. यह डग कई भांति भर रहा है. किस रसभावसे भर रहा है वह रसभाव अलग-अलग हैं.

२६७. परमात्मा जब जीवकी ओर कदम उठाता है तो वह अलग-अलग रीतिसे उठाता है. कंसकी ओर जिस प्रकारसे वह बढ़ा था उस तरहसे देवकी-वसुदेवकी तरफ तो नहीं बढ़ा. जिसके सामने जिस तरहसे कदम बढ़ाता है उसमें सामनेवालेके हृदयके भाव दृष्टिगोचर होते है. उन भावोंमें किसीको हम द्वेष कहते हैं, किसीको भक्ति, किसीको तत्त्वज्ञान, किसीको योगध्यान और किसीको वात्सल्यभाव.

२६८. यह सब लीलायें कृष्णार्थ हैं. यह बात समझ जाओगे तो पता चलेगा कि समस्त सृष्टि भगवदर्थ है. भगवान् अनेकविध लीला करता है. परमात्मा कंसको भयानक दिखता है तो क्या हमको भी दिखे?

२६९. आज तो **''यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्''** के बदले ''यथा भीतिः प्रवृद्धा स्यात्''का ही उपाय दिखनेमें आता है. चम्मच ऐसे नहीं रखोगे तो अपराध पड़ेगा. कुऐंके पानीसे नहीं नहाओगे तो अपराध पड़ेगा, मिश्रीकी आज्ञा है और नागरी धर दी तो अपराध, लड़ तिलकके इस तरफ रख दी तो अपराध, सेवाकी विधिकी पुस्तकमें आज ढोकले भोग धरने थे और फाफड़े धर दिये तो अपराध. यह क्या पागलपन है! केवल

अपराधोंका ही भाव जगा कर किसी न किसी प्रकार भक्तिसे विमुख कर दिया जाये.

२७०. महाप्रभुजीके भावको क्यों नहीं अनुसरते? महाप्रभुजीने सूरदासजीको क्या कहा "सूर व्हेके काहे घिघियात है. कछु भगवल्लीला गा." भावका आवेग क्यों नहीं बढ़ाते, डरके आवेग क्यों बढ़ाते हो?

२७१. वास्तवमें दशा तो यह है कि वैष्णव सेवा करें यह हम गोस्वामी बालकोंको अच्छा नहीं लगता. उसमें कोई सैद्धान्कि कारण नहीं है. घरमें सब भक्ति करने लग जायें और हमारे मंदिरमें न आयें तो हम समुद्रमें डूब जायें, मर जायें क्या!!

२७२. हमारे यहांका एक प्रसंग है. एक परिवारको ठाकुरजीने स्वप्नमें बताया कि मेरा गोवर्धनस्वरूप अमुक स्थान पर बिराजता है. (यह कोई मरजादीकी बात नहीं थी. यह तो नलका पानी पीनेवाले बिन मरजादवालेकी बात है) वह भाई वहां गये और स्वरूप उन्हें मिल गये. उनके उत्साहका तो पार ही नहीं रहा. उसने आज्ञाके बिना ही सेवा प्रारम्भ कर दी. श्रीगोपीनाथजीकी आज्ञा हैं कि **"गुरुदत्तां स्वयंलब्धां"** आज तो हमको डर है कि सब अपने आप सेवा करने लग जायेंगे और हमारे सेवक नहीं बनेंगे तो हम कहां जायेंगे? ऐसे सब लोग स्वयंभू निर्णय लेने लग जायेंगे तो हमारा इन्द्रासन डोल जायेगा. कोई-कोई तो यहां-तक कहते है कि तुम्हारे घरमें मर्याद कहां है? नेग भोग राग वैभव कहां है? ठाकुरजीको इतना परिश्रम दिया जाता है? ऐसा भी समझाते हैं. किसी वैष्णवके हृदयमें भाव बढ़े तो उसे अपरस-मरजादके डरसे भगा देते हैं.

२७३. इन कारणोंसे वैष्णवोंके हृदयमें भाव जागता ही नहीं. उनको

ऐसा लगता है कि बालकोंके ठाकुरजी सच्चे. हमारे तो चालू खातेके. इसमें सेवा क्यों करनी? उन्हें विश्वास ही नहीं आता कि जिस प्रकार मंदिरमें पूर्णपुरुषोत्तम बिराजते हैं वैसे ही हमारे घरमें भी बिराज सकते हैं.

२७४. बादमें वह भाई ब्रह्मसम्बन्ध लेने गया. तब महाराजश्रीने कहा कि पुष्ट करे बगैर सेवा नहीं होती. अतएव वह भाई स्वरूपको पुष्ट करवाने गया. स्वरूप अतिसुन्दर था. उसका व्यापारिक मूल्य बहुत था. उस कारण वह स्वरूप तो महाराजश्रीने ले लिया और कहा कि गोवर्धननाथजीके स्वरूपकी सेवा घरमें नहीं होती हवेलीमें ही होती है. और उसे डरा दिया कि गोवर्धननाथजीकी सेवा घरमें करेगा तो धंधा चौपट हो जायेगा, बीबी भाग जायेगी. वह भाई तो एकदम घबड़ा गया. बादमें महाराजने उसको एक बालकृष्णके स्वरूप पधरा दिये "जाओ खुशीसे सेवा करो". बादमें वह भाई रोता हुआ मेरे पास आया और कहा मुझे तो महाराजश्रीके ऊपर अदालतमें केस करना है.

२७५. कितने ऐसे वैष्णव हैं जो अपने ठाकुरजी ग्वालमंडलीमें पधरा देते हैं. तुमको ऐसा लगता है कि ग्वालमंडलीमें सेवा होती है? मोटे तौर पर तो ठाकुरजीके शृंगार सोने-चांदीके होते हैं. उनके चांदी-सोनेके आभूषण ले कर उन्हें ग्वालमंडलीमें पधरा दिया जाता है. अरे इतने स्वरूपोंकी किस प्रकार सेवा हो सकती है? अपने ठाकुरजीकी तो रो-रो कर सेवा होती है!!

२७६. तुम चाहे कितनी जघन्य कोटिकी सेवा करते हो तो भी ग्वालमंडलीकी तुलनामें तुम्हारे घरमें अच्छी सेवा होती होगी. भले ही तुम एक गुंजा माला धराओ.

२७७. इन कारणोंसे वैष्णवों और श्रीठाकुरजी में कभी साधारणीकरण

होता ही नहीं. गोस्वामी बालक तो पुष्टिरूप और पुष्टिप्रभु का सम्बन्ध जोड़नेके लिये हैं तोड़नेके लिये नहीं और अगर तोड़े तो वह बूढ़ा बैल है गोस्वामी बालक नहीं.

२७८. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि **''तस्मात् सिद्ध्यन्ति कार्याणि''** तुम तुम्हारे हरिका आश्रय करोगे तो घरमें रह कर पुष्टिप्रभुका भक्तिसे आश्रय सिद्ध करोगे तो तुम्हारे सब कार्य सिद्ध होंगे.

२७९. तुम अमेरीका पधारनेवाले गोस्वामी बालकोंसे विनयसे पूछो कि आप दैवी जीवोंका उद्धार करनेके लिये अमेरीकाकी भूमिको कृतार्थ करनेके लिये पधार रहे हो तो वहां कौनसे जलका पान करते हो? जो आप जीवोंके लिये कुएंकी अपरस छोड़ रहे हो तो हमें भी उस सर्वसमर्थ प्रभुकी झारी नलके जलकी भरनेकी आज्ञा दो.

२८०. आप महाप्रभुजीके वंशज हो. आपमें महाप्रभुजीका अशेष माहात्म्य स्थापित है. आप हमारे जीवोंके हृदय भक्तिसे ऐसे छलका दो कि जिससे हम अपने घरमें सेवा करना प्रारम्भ कर दें.

२८१. तुम घरमें सेवा नहीं करोगे तो महाप्रभुजी तुमसे पूछेंगे कि तुमने किसके कहनेसे सेवा नहीं की. तुम लोग निश्चित कहोगे कि आपके वंशजोंके कहनेपर. तब आप बरजेंगे कि मैं प्रमाण कि मेरा वंश? मेरे वंशमें गुरुत्व आता है तो वह मेरे कारण, मेरी वाणीके कारण. और यह गुरुत्व तब आता है जब महाप्रभुजीकी वाणीका विस्तार हो, उत्थापन नहीं.

२८२. माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ़ स्नेह 'भक्ति' है. प्रभुके माहात्म्यको जानो लेकिन अर्जुनकी तरह नहीं. अर्जुनने भी आखिरमें क्या कहा?

आप इस भयंकर रूपको छिपा कर दर्शनीय रूप प्रकट करो. यह हजार हाथ मेरे किस कामके! मुझे तो तुम्हारे चार हाथ ही देखने हैं जिन्हें मैं सखाभावसे पकड़ सकूं. उसी प्रकार तुम प्रभुसे कहो कि आपका माहात्म्य सामर्थ्य जान कर मुझे प्रसन्नता हुई लेकिन अब आप हमारे घरमें साधारणीकृत होकर बिराजो.

२८३. महाप्रभुजी कहते हैं **''अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति, यथा कृष्णो यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सर्वजगदाधारो भवति.''** कृष्ण यशोदाकी गोदीमें बिराजे थे तब मुखमें ब्रह्माण्ड दिखाया था. यह यशोदाकी गोदीमें सोता हुआ बालक ब्रह्माण्डका आधार हो सकता है तो किस कारणसे वह तुम्हारे घरमें बिराजता तुम्हारा लाड़ला सकल ब्रह्माण्डका नियामक, नायक नहीं हो सकता? किस कारणसे उसकी वोल्टेज् घट जाती है?

२८४. माहात्म्य तो केवल जाननेके लिये होता है. चाहना तो प्रभुको है. दो शब्दोंमें, तुम्हारे घरमें बिराजते पुष्टिप्रभुको लाड़ लड़ाओगे तो ही तुम्हारा साधारणीकरण होगा और लाड़ नहीं लड़ाओगे तो मुद्दई तू इश्करा नालायकी.

२८५. हकीकतमें तो भगवान्ने यह सृष्टि अपने लिये ही करी है. उस वस्तुस्थितिको जान जाओ तो तुम्हारे लिये कुछ करनेको रहता ही नहीं. परमात्मा तुम्हारे सामने कदम उठानेको तैयार है. तुम एक-दो कदम भर कर तो देखो! उसकी मंगलाके दर्शन करो. देखो कितनी अंगड़ाई ले कर जागता है. तुम जो खाते हो वह भोग धर कर लो. प्रभु तो कहते हैं कि **''पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति''** कहां कहा है कि ''मरजादेन प्रयच्छति'' अथवा ''नेग-भोग-वैभवेन प्रयच्छति'' अथवा ''सेवारीत्या प्रयच्छति'' अथवा ''नौटकीयां प्रयच्छति''.

२८६. हस्तमिलापके समय वरराजा कन्याका हाथ स्वीकारने लिये हाथ बढ़ाये और कन्या न बढ़ाये तो कैसा लगे? आज मार्गमें ऐसी ही कुछ नौटंकी हो गई है. प्रभु तुम्हारी सेवा लेनेके लिये तैयार हैं और तुम कह रहे हो "हम आपको घरमें कहां पधरायें. हम तो हवेलीके शौकीन हैं".

२८७. परमात्माका पुष्टिभाव जो है वह बीजभाव है. परन्तु बीज तो बीज ही है. जहां-तक उसको खेतमें बो कर उसे बढ़ाते नहीं. शास्त्रमें क्षेत्र = खेत घर देह को कहते हैं. अतएव तुम्हारे क्षेत्रमें उसको बोओ. उसके बगैर इस भक्तिका परिपाक नहीं होगा. तुम्हारे घरमें उसे बोओ. जनतामें नहीं अन्यथा भक्तिका परिपाक नहीं होगा.

२८८. हमारे किशनगढ़में तुलसीक्यारा है. मैं जब मुंबई आ जाता हूं तब वह तुलसीक्यारा पानीके अभावमें सूख जाता है. लेकिन बरसात आनेपर एकदम हरा-भरा हो जाता है. एक बार मैं उस सूखी तुलसीको मुंबई ले आया. गमलेमें रखा और पानी देना चालू कर दिया. इसके उपरान्त वो सूखा ही रहा. बादमें कारणका पता चला. किशनगढ़के गमलेमें बीज दृढ़ था अतएव पानी मिलते ही हरा-भरा हो जाता था. उसी प्रकार तुम अपना बीजभाव दृढ़ करो, उपरान्त तुम घर छोड़ दो, सेवा छोड़ दो तो भी मात्र श्रवण-कीर्तनका जल पड़नेपर तुम्हारी भक्ति हरी-भरी हो जायेगी. तुम जहां भी होगे परमात्मा तुम्हारे पीछे-पीछे होगा.

२८९. अपने यहां एक वार्ता है कि अपने श्रीवल्लभाचार्यजी एवं श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी एक बार पटनासे जगदीश जानेके लिये साथ-साथ निकले. महाप्रभुजीने तो राजमार्गसे जाना पसन्द किया लेकिन

श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने वनमार्ग पसन्द किया. क्योंकि उनकी कृष्णप्रेमकी मस्ती ऐसी थी कि नदीको देख कर श्रीयमुनाजी याद आ जाती थी और वनको देख कर वृन्दावनकी. जगदीश पहुंचनेपर जब दोनों मिले और बातचीत की. तब महाप्रभुजीने कहा आप वन मार्गसे आये यह तो बहुत सुन्दर किया लेकिन अपने पीछे तो देखो, कृष्णको रक्षा करनेके लिये पधारना पड़ा है. हमारे यहां तो तत्सुखका विचार प्रधान है. कृष्ण हमें हमारी सुरक्षाके लिये नहीं चाहिये परन्तु प्रेमभक्तिके लिये चाहिये. वैसे तो श्रीचैतन्यमहाप्रभुका ऐसा भाव नहीं था; वह तो केवल अपने आनन्दके लिये वनमार्गसे पधारे थे परन्तु प्रभुको तो श्रम हुआ ही.

२९०. यह तो अलग-अलग भक्तिके भावोंकी बात है. इसमें कुछ विवाद भी हो तो आपत्तिजनक नहीं है.

२९१. हमें कृष्णकी रक्षा करनी है. उससे रक्षा नहीं करवानी. यह भाव तुम सार्वजनिक मंदिरमें किस प्रकार पाल सकते हो? जब तुम घरके एक कोनेमें प्रभुको पधराओगे तो तुम्हें पता चलेगा कि उसकी सुरक्षाके कितने अवसर आते हैं.

२९२. जिस प्रकार वार्तामें आता है कि डोकरीसे प्रभुने कहा कि मुझे बिल्लियोंसे डर लगता है. और डोकरी बोली कि "राक्षसोंको मारा तब तो डर नहीं लगा!" इसमें प्रभुसे साधारणीकरणकी प्रक्रियामें थोड़ी गड़बड़ हो गई. और प्रभुने बोलना बन्द कर दिया. डोकरीको समझना चाहिये था कि प्रभु साधारणीकृत हो कर एक डोकरीके साथ क्या बात करेंगे? यही तो कि मुझे भूख लगी है, मुझे डर लग रहा है. वह कोई सखाभावसे उसके साथ खेलेंगे थोड़े ही!

२९३. बीजभाव श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी जैसा दृढ़ होनेपर गृहसेवाकी जरूरत नहीं है. तुम जहां विचरोगे प्रभु वहींपर तुम्हारे साथ ही हैं.

२९४. अडैलमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु पधारे तब महाप्रभुजीके घरमें प्रसाद समाप्त हो गया था और अनप्रसादी खिलायें कैसे? तब महाप्रभुजीने बहूजीसे कहा कि यहां प्रसादी-अनप्रसादीके विभेदकी आवश्यकता नहीं है. श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी कृष्णमय हैं. ये जो कुछ भी खायेंगे वही प्रसाद बन जायेगा.

२९५. अपने यहां वैष्णवोंमें भी एक राजा आसकरण हो गये हैं जो दिन-भर वनमें विचरते थें. गुसांईजीने अपनी बेटीजीको खास हिदायत दे रखी थी कि जब कभी आसकरण घरमें आ जायें तो जो कुछ भी सामग्री सिद्ध कर रखी हो उन्हें खिला देना. भले ही श्रीनवनीतप्रियाजीको भोग धरा हो कि न धरा हो. और जब कभी आसकरणजी आतें और प्रसाद लेतें तब प्रभु कहतें कि ''मैने तो आज दो बार आरोगा.''

२९६. जब बीजभाव दृढ़ न हो तो घर नहीं छोड़ना चाहिये. घर बिना जहां-तहां हवेलियोंमें भटकते रहनेसे बीजभाव दृढ़ नहीं होगा. परन्तु घरमें रह कर तन-मन-धनसे सेवा करनेसे ही बीजभाव दृढ़ होगा.

२९७. **''ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम्''** ज्ञानी लोग तो केवल आत्मासे ब्रह्मानन्दका अनुभव करते हैं परन्तु भक्तको तो घरमें एक-एक इन्द्रियसे सेवा करनेको मिलती है. प्रत्येक कार्य प्रभुके लिये ही होता है. सेवाके लिये पुत्र पत्नी चाहिये. उसका सब कुछ ही भगवत्सेवाके लिये ही होता है.

२९८. ब्रह्मसम्बन्ध मंत्रमें देखो, मैं और मेरी ममता से सम्बन्धित

सब कुछ समर्पित करता हूं. मैं हूं तो कैसा? जिसमें कुछ आनन्द नहीं है, कुछ ज्ञान मरजाद वैभव नहीं है, वैसा दीन हीन और कृष्ण कैसा है? जिसमें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य सब बिराजते हैं. कृष्=सदा; ण=आनन्द; ऐसे सदानन्दके प्रति मैं समर्पित होता हूं. समर्पणमें पत्नीके बाद 'घर' शब्द है. वह घरमें तो प्रभु बिराजें तब ही समर्पित हो सकता है, हवेलीको थोड़े ही समर्पित करते हैं.

२९९. यह **''लक्ष्मी-सहस्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्''** तुम्हारे घरमें सेवा लेनेके लिये पधार रहा है और तुम मुंह फेर कर खड़े हो कि मेरे पास अपरस नहीं है, मरजाद नहीं है, आचार-विचार नहीं है. मुखिया भीतरिया बालभोगिया फूलघरिया कीर्तनिया झापटिया समाधानीओं की बड़ी बटालियन नहीं है. मैं तुम्हें कैसे रिझा सकता हूं? आप तो हवेलीमें राजसी वैभवमें ही बिराजो और तुम प्रभुको विदा कर देते हो.

३००. प्रभु अगर तू यहां नहीं बिराजेगा तो यह अंधकूप बन जायेगा और बिराजेगा तो यह घर गोकुल गांव बन जायेगा. जिसमें नंद-यशोदा गोपी गिरिराज यमुना सब होंगे तेरे बिराजनेके कारण.

३०१. अरे तुम भक्तिका गलत स्वरूप समझ रहे हो. महाप्रभुजी कह रहे हैं **''यथा कथंचित् क्रियमाणस्य कृष्णे वासना शुभा''** तुम्हारे हृदयमें जब कृष्णवासना जागेगी तो तुम्हें लगेगा कि मेरे घरमें भी कृष्ण होना चाहिये. क्यों न हो? क्या यह महाराजका एकाधिकार है? क्या मैं प्रवाही जीव हूं? मैने ब्रह्मसम्बन्ध लिया है. प्रभुने महाप्रभुजीको वचन दिया है कि आप जिसका हाथ मुझे पकड़ाओगे उसे मैं कभी नहीं छोडूंगा. जिनमें कृष्णवासना नहीं जागती वह तो भक्तिका अधिकारी ही नहीं है.

३०२. जिव्हा चाहे जितने पहाड़े पढ़े परन्तु भक्तिके मार्गकी दशा तो आज ऐसी ही हो रही है.

३०३. यह भक्तिकी कथा किस प्रकारकी है? यह कोई नौटंकीकी कथा नहीं है. यह तो ईशानुकथा है. ईशस्य अनुगामिनां कथा. ईश = ठाकुर. ''नंदनदन कर घरको ठाकुर आपुन व्है रहै चेरो'' बस ईशानुकथा प्रारम्भ हो गई. और गुजरातीमें कहना हो तो ''सदा श्रीकृष्णने सेवो रे समझी ल्योने हवे सूधो सिद्धान्त'' इसमें किसी प्रकारके विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है. यह विस्तार करना पड़ रहा है वह क्षोभजनक है. पुष्टिमार्गियोंको यह बात कहनी पड़े, लज्जा आनी चाहिये. जो पुरातन वातावरण पुष्टिमार्गमें था वह कहां गया?

३०४. विवाहिता स्त्रीको कहना पड़ रहा है कि अपने पतिके पास रहो? अरे यह तो झगड़ा करके पतिके पास जाती है और अगर नहीं जाती तो कहीं न कहीं कुछ तो गड़बड़ जरूर है. अथवा तो क्या बेवकूफी करके विवाह किया था?

३०५. वार्तामें आता है कि कृष्णदासजीकी देह छूटी. अतएव गुसांईजी परेशानीमें थें के जिसे अधिकारी बनाओ उसका बिगाड़ होगा. उस समय धर्माचार्य आजके जैसे चालूखातेके नहीं होते थे. आज तो यह विचार होता है कि यदि वैष्णवोंका सुधार हो गया तो हमारा घरखर्च कैसे चलेगा? और अधिकारी बिना देवालय चले किस प्रकार? बादमें श्रीनाथजीने सुन्दर उपाय बताया कि अधिकारके लिये इकलाई रखो. जिसे स्वीकार करनी होगी कर लेगा. जिसका बिगाड़ होना होगा वह इकलाई ओढ़ लेगा.

३०६. उस जमानेमें अधिकारी होते थे आज ट्रस्टी होते हैं अथवा

सार्वजनिक हवेलियोंमें मुखिया भीतरिया अधिकारी महाराज बन जाते हैं. पहले जमानेमें एक कहावत मशहूर थी ''मुखिया सो दु:खिया भये, जलघरिया जमदूत. अधिकारी अंधा भया, भीतरिया भये भूत'' और अब हम लोगोंके बारेमें भी सुन लो कि ''महाराज रसोइया बने'' ध्यान रहे यह कथा देवालयकी है गृहसेवाकी नहीं.

३०७. देखो तो सही महाप्रभुजीके कितने मीठे वचन हैं अगर स्वाद ले सको तो **''सर्वेषां तु फलं मोक्षो''** जितने भी प्राणी इस भवसागरमें आते हैं, वह सब डूबनेके लिये ही आते हैं. फल किसे मिलता है जो आपकी सेवामें लगे वही मुक्त होता है. मोक्ष तो मरनेके बाद मिलता है. **''जीवतां हरिणा सह लीलया परमं सौख्यम्''** जीवित मनुष्यको तो अपने घरमें लीलात्मक सेवा करनेका परम सुख मिलता है. **''ब्रह्मभावात्तु भक्तानां गृह एव विशिष्यते.''** **''परिजनश्च कृतार्थो भवति''** अरे प्रभुको पधराया तो एकजनने और कृतार्थ उसके सर्वपरिजन हो गये.

३०८. ज्ञानमार्गमें ऐसा नहीं है. चेले लोग जहां-तक ज्ञानी नहीं होते वहां-तक उनकी मुक्ति नहीं होती. लेकिन भक्तिकी कथा तो कुछ और ही है. घरमें भक्ति करे तो उसका लाभ उसके परिवारजनोंको भी मिलता है. अरे दूध प्राप्त करनेके लिये भैंस बांधें तो भैंसको भी भक्तिका फल मिल जाता है.

३०९. बहुतसे ज्ञानी तो भगवान्को भी खत्म करना चाहते हैं. ज्ञानी लोग सात्त्विक वासनासे खत्म करना चाहते हैं. ''सोहम्'' स्वयं ब्रह्म बन जाते हैं और पहले ब्रह्मको गायब कर देते हैं. यह परमात्माको खत्म करनेकी ही तो मांग है. ऐसे ज्ञानियोंको भी भगवान् भक्ति नहीं देतें. मोक्ष देते हैं. तू मुझे खत्म करना

चाहता है तो मैं ही तुझे मोक्ष दे कर समाप्त कर देता हूं. अर्थात् तू अब इस दुनियांमें ज्यादा गड़बड़ मत कर.

३१०. हमारे यहां तो सेवाका फल भी सेवा. इस लोकमें जो सेवा करे उसे भक्तिकी वासनासे परलोकमें सेवा ही मिलती है, मुक्ति नहीं. इस प्रकार भक्तको दोनों ओरके लाभ मिल जाते हैं.

३११. यहां जो गुसांई बालक अपनेको पुरुषोत्तम मानते हैं वे इस लोकमें भक्ति नहीं कर सकते. उनके हिस्सेकी सेवा मुखिया भीतरिया करते हैं. मनोरथ सेठ लोग करते हैं और अपनी गांठका पैसा मारुति और वीडियो में खर्चते हैं.

३१२. सेवा करनेवालोंके लिये टीकाकार कहते हैं कि वह अगर सोता भी है तो वह सेवा ही करता है. किस प्रकार? सुबहकी सेवाके लिये शरीरको चुस्त बनानेके लिये. विवाह किया है तो कृष्णसेवाके लिये संगिनी मिले इसलिये. पुत्रोत्पत्ति करता है तो भी कामवासना पूर्तिके लिये नहीं परन्तु यह जो अलौकिक निधि मेरे घरमें बिराज रही है उसका कोई वारिस भी तो होना चाहिये.

३१३. हरेक बातमें कृष्णस्मरण ही होता है. यह तो एक प्रकारका साधारणीकरण हो जाता है. जिसके घरमें सेवा बिराजती है उसके घरका एक छोटा बच्चा भी समझ जाता है कि भोग धरे बगैर कोई भी चीज नहीं ली जाती. बस कृष्णवासना प्रकट हो गई. किस प्रकार? क्योंकि तुमने घरमें कृष्णको पधरा लिया है. हवेलियोंमें भटकनेवालोंके बालकोंमें ऐसी कृष्णवासना प्रकट होती नहीं देखी.

३१४. मैं एक बार मध्यप्रदेशमें गया था. वहां एक बार रातमें घनघोर

बरसात हो रही थी. सुबह छज्जेमें टहल रहा था तो नीचे एक भाई खड़ा देखा. मैंने पूछा ''कहांके हो?'' वह बोला ''यहांसे सत्तर मील दूर एक गांवका.'' मैंने पूछा ''यहां कब आये?'' उसने कहा कि ''रातको आ गया था.'' मुझे लगा कि इसने सारी रात बरसातमें ही दुकानके छज्जेके नीचे बैठ कर निकाली है. फिर भी उसकी धीरज ऐसी कि उसने यह नहीं कहा कि मैं प्रवचन सुनने आया हूं, इसलिये मुझे कुछ सुविधा दो. मैंने पूछा कि ''चाय पियोगे?'' उसने जबाब दिया कि ''मैं जिसके घर ठाकुरजी पधरा कर आया हूं वहां पर अभी ठाकुरजीकी मंगला नहीं हुई होगी और ठाकुरजीकी मंगलाके पहले मैं चाय कैसे ले लूं?'' मुझे अति आनन्दका रोमांच हो आया. मुझे लगा कि इसके सामने मैं क्या प्रवचन करूं? यह तो भक्तिवर्धिनी जी रहा है. उसका नशा तो देखो कि ठाकुरजी न जगे उससे पहले मैं चाय नहीं पीयूंगा भले ही वह बालककी आज्ञा क्यों न हो!

३१५. यही कथा तो ईशानुकथा होती है. कितनी दिव्य यह कथा है!! **''ईशस्य अनुगामिनां कथा''** हृदयमें कृष्णवासना खिलाओ, विषयवासना निकालो तब कहीं जा कर ईशानुकथा समझमें आयेगी. ईश = ठाकुरजी, अनु = चेरो. महाप्रभुजी भक्तिकी कथाको ईशानुकथा कहते हैं. बाकी सब कथायें मुक्तिकी, विषयानुरक्तिकी. यह दोनों (अन्तिम छोर) एक्स्ट्रीम् हैं. इन दोनों अतिवादोंके बीचका सरल मार्ग कृष्णानुरक्तिका है जिसको महाप्रभुजी 'ईशानुकथा' कहते हैं. ''नंदनंदन कर घरको ठाकुर आपुन व्हे रह चेरो''की कथा.

३१६. महाप्रभुजी कितने सुंदर वचन कहते हैं **''ईशानुरूपभक्तानां कथेयं विनिरूपिता, ईशस्य चेत्कथा न स्यात्''**. यह कथा जीवकी कथा नहीं है, जो मुक्त अथवा सिद्ध हो गया है. यह तो ईशकी

कथा है. जो ईश पुष्टि करके किसीके घरमें बिराजा है. ऐसे भावके साथ कि मेरा भक्त भवकूपमें डूब नहीं जाय. उसके लिये मैं भी अपनेको उसके साथ डालूंगा और उसके साथ तैरूंगा.

३१७. ईश ही तुम्हारे घरमें न हो तो किसके चेरे बनोगे? ब्रह्मसम्बन्धको याद करो. तुमने कहा था कि मैं अपनेको और अपने सबको समर्पित करता हूं. मैं तुम्हारा हूं. फिर एक बार समर्पणके भावको हृदयमें जगाओ. उसके बाद वह कहेगा "तू मेरा है, इतना ही नहीं मैं तेरा हूं और तेरे सिवाय किसी दूसरेका नहीं."

३१८. कृष्ण जब ऐसा कहेगा तब ईशानुकथा प्रारम्भ हो गई. ईश और अनुगामी की कथा. **"हली-मलीने चालिया चरणाट ज्यां निज धाम. नवरंग नागर प्रकटिया मन पूरवा सहुकाम."** तत्पश्चात् तुम्हारे हाथमें हाथ डाल कर जब वह फिरेगा तो किसीकी ताकत नहीं कि तुमको छू भी सके. शर्त परन्तु इतनी ही है कि पहले तुम्हारे घरमें ईश होना चाहिये. ईश नहीं तो ईशानुगामी नहीं. कृष्ण नहीं तो कृष्णका दास कैसे? उस ईशके घरमें बिराजमान होने पर ही तो कृष्णकथा चालू होगी.

३१९. भक्तिशास्त्रका यह भागवत शास्त्र है. 'भगवत:' अर्थात् भक्तोंका शास्त्र है. भगवान् और भक्तों के बीचमें जो भावात्मक सम्बन्ध है उसका शास्त्र है. महाप्रभुजी कहते हैं कि **"इत्येवं भगवत् शास्त्रं गूढतत्त्वं निरूपितम्"** जब यह शास्त्र ही गूढ़ है तो भगवान् किस प्रकार सार्वजनिक हो सकता है? भगवद्भाव किस प्रकार सार्वजनिक हो सकता है?

३२०. आज भक्तिवर्धिनीका चिंतन, चिंतनका उपसंहार करना है. उससे सम्बन्धित श्लोकका चिंतन करना है. लेकिन उससे पहले थोड़ा

स्पष्टीकरण गूढ़ तत्त्वके बारेमें करना आवश्यक है.

३२१. वैदिक शास्त्रोंमें परमात्माकी प्राप्तिके जो साधनोपदेश हैं वह केवल त्रैवर्गिक अधिकारियोंके लिये हैं. ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य. वैश्यमें भी प्रत्येक बनिया वैश्य नहीं कहलाता. जिसने उपनयन संस्कार किया हो वह वैश्य बाकी सब व्यापारी. उसी प्रकार हरेक ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं होता. जो षट्कर्म निरत है वह अर्थात् यजन याजन अध्ययन अध्यापन दान प्रतिग्रह करे वह ब्राह्मण.

३२२. यह त्रैवर्णाधिकारक धर्म है. उसके लिये महाप्रभुजीका यह अभिप्राय है कि **"यावद् देहाभिमान: तावत् वर्णाश्रमधर्म एव स्वधर्म: अन्य: परधर्म:"** जहां-तक तुम्हें भान है कि मै ब्राह्मण हूं, क्षत्रिय हूं वहां-तक तुम्हारे वर्णाश्रमधर्म पालनेके बारेमें कोई छूटछाट नहीं है.

३२३. तुम पुष्टिमार्ग पाल रहे हो इस कारण तुम्हें शास्त्रोंके बंधनमेंसे अथवा तुम्हारे कर्तव्य पालनमें कोई छूट नहीं मिल सकती.

३२४. लेकिन जब देहाभिमान शिथिल हो जाये तब तुम्हारे लिये वर्णाश्रमधर्म स्वधर्म नहीं है, मात्र आत्मधर्म ही स्वधर्म रह जाता है. उसके बाद तुम्हें ज्ञानमार्गसे जाननेका प्रयास करना है तो उससे करो, भक्तिमार्गसे जाननेका प्रयास करना है तो उससे करो; केवल इतना ही धर्म रह जाता है.

३२५. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि **"संघातव्यतिरिक्तम् आत्मानं पुन: मन्यते तदा भगवद्धर्मएव स्वधर्म: वर्णाश्रम: परधर्म:"**.

३२६. कलियुगमें परिस्थिति कुछ गड़बड़ भरी हुई है. किसे ब्राह्मण कहना किसे वैश्य, यह बड़ा प्रपंच है.

३२७. कई मरजादी तो ब्राह्मणोंसे भी अधिक आचार-विचार पालन करते हैं. चाहे वह कुणबी, धोबी हो. मैंने दादाजीसे सुना था कि सौराष्ट्रमें एक कालू बापू जो ऑफिस्का चपरासी था वह मरजादी था. उसे आचार-विचार इतने आग्रहसे पालनेकी आवश्यकता नहीं थी लेकिन यह कलियुग है. कलियुग अर्थात् हेरा-फेरी. हम लोग अंग्रेजोंकी नकल करते हैं वह लोग हमारी करते हैं. हरे राम हरे राम कहते हुये रास्तेमें नाचते हैं.

३२८. महाप्रभुजी कितनी सुंदर आज्ञा करते हैं जानो तो आनन्द आ जाये. सत्ययुगको किस कारण 'कृतयुग' कहते हैं? जिसका जो कर्तव्य है वह वैसे ही करता है. कोई छूटछाट नहीं. त्रेतामें थोड़ी छूट मिली. द्वापरमें संदेह आया. और कलियुगमें कुछ करे-धरे नहीं परन्तु प्रत्येक बातमें कलह खड़ी करे.

३२९. यह कलियुग खाली पुष्टिमार्गमें ही नहीं सब सम्प्रदायोंमें आया है. कलियुगमें वर्णाश्रमधर्म छिन्न-भिन्न हो गये हैं. लेकिन महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि वर्णाश्रमधर्मको जान-बूझकर नहीं तोड़ना चाहिये जितना बन सके उतना पालन करना चाहिये. **''स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्. इन्द्रियाश्वविनिग्राहः''**.

३३०. यह सब होते हुये भी जो भागवतमार्गका अनुसरण करेगा तो **''श्रीभागवतमार्गेण स कथंचित् तरिष्यति'' ''मार्गोयं सर्वमार्गाणाम् उत्तमः परिकीर्तितः''**.

३३१. भागवतमार्ग सर्वाधिकारक मार्ग है अर्थात् विश्वधर्म नहीं लेकिन जिनमें पुष्टिभक्तिका बीजभाव है, भगवद्भक्तिका बीजभाव है उनके लिये.

३३२. उसी प्रकार गीतोक्तधर्म भी सर्वाधिकारक हैं. वह शरणागतिका

मार्ग है. कोई भी जीव परमात्माकी शरणागति ले सकता है. उसमें किसी प्रकारकी जात पांत वर्ण लिंग जाति देश पंथ किसी भी प्रकारका भेद नहीं. भागवतोक्त धर्ममें कोई भेद नहीं है.

३३३. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि **''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः. स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यक्वापि कदाचन''**. कहीं भी किसी समय भी इसके सिवा कोई दूसरा धर्म हो ही नहीं सकता. जहां-तक देहाभिमान है वहां-तक जिस जगह रहते हो, जिस देशमें रहते हो, जिस जातिमें हो, उसके नियम तो पालने ही पड़ेंगे.

३३४. अपने जो कर्तव्य हैं, फर्ज हैं, वह सब देहके अनुसार ही कहनेमें आते हैं. जब भक्तिकी बात, आत्माको अनुलक्ष करके कही जाती है तब उसमें कुछ और बात होती है. लेकिन यह आत्मा देहमें रहनेवाली है. अतएव देहको वह भक्ति कर्तव्यरूपमें प्राप्त होती है. उदाहरणतः शास्त्रमें ब्राह्मणको शराब पीनेकी छूट नहीं है. अगर ब्राह्मण शराब पी ले तो वह इतना अपवित्र हो जाता है कि जीवित रहनेके लिये उसके पास कोई प्रायश्चित नहीं है. शराब तो देह पीती है परन्तु उस पापकी भागीदार आत्मा बनती है. इस आत्माको देहके कारण प्राप्त कर्तव्य पूरे तो करने ही पड़ते हैं. देह छूटनेके बाद आत्माको नरक भोगना पड़ता है. ब्राह्मणके लिये 'शराब न पीना' देहके कारण प्राप्त कर्तव्य है.

३३५. क्षत्रियोंके लिये शराब पीनेकी छूट है, आज्ञा नहीं. क्षत्रियोंकी देहमें भी आत्मा है. आत्माके कारण ही जो यह कर्तव्य हो तो वह भी शराब नहीं पी सकता. लेकिन ऐसा नहीं है. शराब नहीं पीना वह देहके कारण प्राप्त होता धर्म है. अतएव

आत्माको भी उसके फल भोगनेमें आते हैं. आत्माको देह द्वारा करे गये शुभ-अशुभ कर्मोंके फल भोगने पड़ते हैं.

३३६. इसके विपरीत देह धारण की इस कारण सेवा करनी ही चाहिये ऐसा सिद्धान्त महाप्रभुजीने कभी स्थापित नहीं किया. परन्तु तुम आत्मा हो, परमात्माका अंश हो. परमात्माके प्रति तुम्हारा सहज आकर्षण होना ही चाहिये. लेकिन ऐसा क्यों नहीं होता? इसका भी कारण महाप्रभुजी बताते हैं कि तुम हजारों वर्षोंसे अपने अंशीसे छूट गये हो. उससे अलग होनेका भान भी तुम भूल गये हो. आत्मापर अनेक आवरण चढ़ गये हैं इस कारण तुम्हें कुछ याद नहीं है कि परमात्मा कितना प्रिय है.

३३७. किसी शायरने कहा है कि "वतनकी कशिश और वतनकी मौहब्बतको, जरा कोई देखे वतनसे निकलके." उसी प्रकार परमात्मासे बिछुड़नेका भान जो तुम्हें हो तो पता चले कि उसके बिछुड़नेका ताप-क्लेश कैसा होता है?

३३८. वैज्ञानिक कहते हैं कि सूर्यमेंसे पृथ्वी तथा दूसरे ग्रह निकले हैं. इस कारण वह सब उसके पास भ्रमण करते हैं. तुमने देखा होगा कि आकाशमें इन सबको किसी डोरसे नहीं बांधा गया परन्तु जिसमेंसे निकले हैं उसमें उनकी सहज प्रीति है. अतएव उसे छोड़ कर कहीं और नहीं जाते; अंश-अंशीकी सहज प्रीति है.

३३९. हम लोग परमात्मामेंसे निकले हैं तो हम क्यों नहीं परमात्माकी आस करतें? इसका कारण यह है कि हम इसका भान भूल गये हैं. इस भानको ही जो जगाती है वह ही तो भक्ति है. जीवात्मामें जो परमात्माके प्रति आकर्षण अनुभव है उसे ही महाप्रभुजी 'पुष्टि' कहते हैं. इस आकर्षणको अनुभव करके जब उसकी परिक्रमा लगाने लगे तो उसे महाप्रभुजी 'भक्ति' कहते हैं. सूर्यका गुरुत्वाकर्षण सहज कृपाकी तरह उसके अंश न्यून ग्रहोपर रहता है. अंशी सूर्य ग्रह जैसी परिक्रमा करते हैं.

३४०. "**पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् पराङ् पश्यति न अन्तरात्मन्**" यह श्रुतिमें कहा गया है कि परमात्माने इन्द्रियोंके द्वार बाहरकी ओर बनाये हैं. कानके अंदर, आंखके अन्दर कया है उसे कोई देख नहीं सकता. केवल बाहरकी आवाज सुन सकते हैं और बाहरकी वस्तु देख सकते हैं. वाणीके भीतर क्या है उसका वर्णन हो नहीं सकता. लेकिन किसी समय तुम्हें ऐसा भाव जगे कि बहुतसे विषयोंके भोग किये, कहीं भी संतोष नहीं मिला, बहुत भटके; अब परमात्माकी ओर चलें. एक गाना है "आ अब लौट चलें." तब तुम्हारे ऊपर की गई पुष्टि भक्तिमें खिल उठेगी.

३४१. "**बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति**" ऐसा भागवत कहती है कि आत्मा रूपी पतिकी इतनी अधिक पत्नियां (इन्द्रियां) हैं. पतिको (आत्मा) सब मिल कर लूट लेती हैं. आंख कहती है कि रूपके पीछे दौड़, जीभ स्वादकी ओर खींचती है. पैर सिनेमाकी ओर जानेके लिये चंचल हैं. उसके लिये भागवत समझाती है "आ अब लौट चलें." तू थोड़ा स्मरण कर. अपने मूलकी ओर चल. इन्द्रियां तो तेरी पत्नी हैं. वह अपने आप तेरे पीछे पीछे चलेंगी. वह भी तेरे साथ परमात्माकी ओर चलेंगी.

३४२. उपनिषद् और तंत्र की तुलनामें भागवत दूसरी ही प्रक्रिया बताती

है. जब तुम अपने घरमें प्रभुका सेवन करोगे तब आत्माका परमात्माका स्मरण करते देख कर इन्द्रियोंमें भी ऐसी दौड़ा-दौड़ मचेगी कि पहले मैं मिलूं कि पहले मैं, 'अहम् अहमिका'. वाणी कहेगी कि पहले मैं गुणगान कर लूं. आंख कहेगी कि पहले मुझे दर्शन कर लेने दो. बुद्धि कहेगी कि पहले मुझे जान लेने दो. इस प्रकार सब इन्द्रियां लाइन् तोड़ कर प्रभुको मिलनेके लिये दौड़ेंगी. महाप्रभुजी इसे 'भक्ति' कहते हैं.

३४३. जब श्रीठाकुरजीको बालकके पास पुष्ट करवोनेके लिये ले जाते हैं तब वे श्रीठाकुरजीके अंग-अंगका स्पर्श करते हैं. अथवा पुत्रजन्मके बाद पिता बालकको लेकर कहता है "**अंगाद् अगांत् संभवसि**"! मेरे हाथमेंसे तेरा हाथ घड़ा गया है. मेरे पैरमेंसे तेरा पैरा घड़ा गया है. मेरे हृदयके टुकड़े! तू मेरेमेंसे बाहर आया है. मैं अपनी पत्नी (जाया) द्वारा पुत्ररूपमें फिर जन्मा हूं.

उसी प्रकार सहस्र वर्षों पहले भगवान्ने तुम्हें कोई आशीर्वाद दिया होगा कि तू मेरा है, मैं तेरी सेवा अंगीकार करूंगा. तू यहां-वहां भटकते हुये अपनेको भूल गया है और मुझे भी भूल गया है. अब फिर याद कर कि तू परमात्माका था और तुझे अपने यहां पधराना है. तुझे आशीर्वाद देना है. मेरे हृदयके भावको साक्षात् बाहर प्रकट करना है.

३४४. श्रीठाकुरजी वास्तवमें तो अजन्मा हैं. ऐसा होते हुये भी नंदके घरमें फिरसे जन्मे. तो अपने घरमें भी फिरसे जन्म सकते हैं. गांवको आशीर्वाद दे वह तो मंदिरका ठाकुर. लेकिन जिस समय तुम्हें ऐसा भाव लगे कि उसके मस्तकपर हाथ फेर लूं, माथा सूंघ लूं और कहूं कि "रानी तेरो चिर जीयो गोपाल", बस वहीं वह पुष्ट हो गया.

परमात्माने तुम्हें आशीर्वाद दिया तब पुष्टि सिद्ध हो गई और जब तुमने उसे आशीर्वाद दिया तब भक्ति सिद्ध हो गई. ऐसा भाव तुमको लगता हो तो तुम्हारा बीजभाव दृढ़ है और जब तुम उसे भूल जानेके लिये तैयार हो और सार्वजनिक मंदिरमें माथा नमाते हो तो तुम्हारा बीजभाव अदृढ़ है. एक बार उसके मस्तकपर हाथ तो फेरो, फिर देखो कितना आनन्द आता है.

३४५. जीवको कई प्रकारके अधिकार भगवान्ने प्रदान किये हैं. किसीसे ऐसी बात करें तो उसे लगेगा कि भगवान्को भी आशीर्वाद दिया जाता है भला!! हां अगर ऐसी पुष्टि है तो. तुम्हारे अंदर ऐसी कृष्णवासना है तो. अरे कृष्ण भी तुम्हारे निकट नतमस्तक हो जायेगा और तुम कहोगे कि तू मेरे हृदयका साक्षाद् भाव प्रकट हो गया है. तू मेरी ही आत्मा है, मेरे घरमें बालभावसे बिराजा है. एक बार यह समझ लोगे तो रति हो जायेगी. यह कितनी दुर्लभ और अचिन्त्य घटना है. अगर यह नहीं समझोगे तो भटकते रह जाओगे.

३४६. बादमें तो वह सर्वज्ञ होते हुये भी अज्ञ बन जायेगा. निरपेक्ष परमात्मा तुम्हारे लिये सापेक्ष बन जायेगा और तुमसे कहेगा कि तू मेरे लिये क्या लाया? खिलौना लाया कि नहीं? 'प्रतिमास्वल्पबुद्धिनाम्' वह भी अल्प बुद्धिवाला बन जायेगा. तुम्हें फिर लगेगा कि होगा वह सर्वज्ञ वैकुंठमें, मुझे उससे क्या लेना-देना. मेरा ठाकुर तो इतना अज्ञ है कि मुझसे कहता है कि मेरे लिये कौनसा खिलौना लाया?

३४७. बस यहींसे पुष्टि और भक्ति प्रारम्भ हो गई. और इस भक्तिका आनन्द लेनेके लिये अत्यन्त गूढ़ स्थल चाहिये. तुम्हारे घर जैसा गूढ़ स्थल और कहां हो सकता है? यह अतिशय गूढ़

रसात्मक है और गूढ़ भावात्मक है. गूढ़ भजनीय है. यह बात समझ सको तो गूढ़ भाव तुम्हारेमें भी प्रकट हो जायेगा. और इसे जाननेमें चूक गये तो सबके सामने सब कुछ बिखर जायेगा.

३४८. महाप्रभुजीने ऐसा उपदेश दिया है जिसमें देश काल मंत्र किसीकी भी अपेक्षा नहीं है. मात्र भावकी अपेक्षा है. जो भाव तुम्हें प्राप्त है उस भावसे तुम समर्पित होते हो कि नहीं!

३४९. परमात्मा बन कर तुम्हें जीना नहीं है. परमात्माके साथ आनन्दसे रहना है, उसको भजना है.

३५०. लेकिन ऐसा न हो कि बादमें परमात्मा तुम्हारेसे घबड़ाने लग जाये और सोचे कि इसके पास जाऊं कि नहीं. जाऊं और यह मेरा धंधेमें उपयोग करे तो!!

३५१. महाप्रभुजी एक सुंदर बात कहते हैं कि **''धनाभिनिविष्टचित्ताः न भगवत्सम्मुखा भवन्ति, बालाएव स्तनपानव्यग्रा, मातरमेव मन्यन्ते''** जिनका चित्त धनमें चौंट गया है वह भगवत्सन्मुख नहीं हो सकता. यह तो बालक जैसा है. स्तनपानव्यग्र बालक माताकी गोदीमें ही जाता है पिताकी नहीं.

३५२. दर्शन करानेके लिये कपाट खोलें और देखें कि मनोरथी आया कि नहीं? आये तो बीड़ा दें, पेड़ा दें, लड्डू दें क्योंकि उसमेंसे कुछ दूध मिल रहा है. और हम कहते हैं कि हम आपको नहीं (श्रीठाकुरजीको) पहचानते क्योंकि हम जानते हैं कि मां कौन है (प.भ.मनोरथी) जहां हमें दूध मिल रहा है.

३५३. मांको तिरस्कारो नहीं लेकिन पिताको भूल तो न जाओ. जिस

समय धनका लालच छोड़ कर कृष्णकी लालसा तुम्हारे अन्दर जगेगी तब ही तुम समझोगे **''इत्येवं भगवत् शास्त्रं गूढतत्त्वं निरूपितम्, य एतत् समधीयीत तस्यापि स्याद् दृढा रतिः.''**

३५४. जाननेके बजाय जरूरत उसको चाहनेकी है. उसके लिये भक्तिका सत्य स्वरूप समझना चाहिये. उसके लिये प्रभुके सन्मुख होना पड़ेगा, समर्पित होना पड़ेगा. बादमें महाप्रभुजी आशीर्वाद देंगे कि अब तुझे चिंता करनेकी कोई जरूरत नहीं है. **''सर्वं समर्पितं भक्त्या, कृतार्थोऽसि सुख भव''**

३५५. अपना और अपने प्रभुका सम्बन्ध कितना घनिष्ठ है. हम उसमेंसे छिटके हैं. हमें उसका ही भजन करना चाहिये. मांके साथ द्वेष मत करो लेकिन स्तनपान व्यग्र बालकसी बचकानी हरकतें तो मत करो!

३५६. अंग्रेजीमें दो सुन्दर मुहावरे हैं. बालक जैसी निश्छलता भोलापन जिसका मजा लेना होता है और बालककी अज्ञानता जिसे दूर करनी होती है. उसी प्रकार हम गोस्वामी बालक, बालककी तरह अज्ञानताका प्रदर्शन करें तो हमें सुधारनेका विनयसे प्रयास करो.

३५७. उनसे विनय करो कि हमें ग्रंथ समझाओ. ऐसी अगड़म-बगड़म बात करोगे तो कैसे चलेगा? आप नहीं समझाओगे तो कौन समझायेगा? महाप्रभुजीने इतना परिश्रम किसके लिये किया है? ऐसी भक्तिके भौंडे प्रदर्शनमें जितना समय लगाते हो उसका आधा समय भी ग्रंथ समझानेमें लगायें तो काम बन जाये.

३५८. ऐसा आग्रह रखोगे तो वह भी ग्रंथ बांचना प्रारम्भ कर देंगे.

वह लोग भी सुधर जायेंगे. और अगर वह लोग कहें कि अभी फुरसत नहीं है तो कहो कि तुम्हें भी फुरसत नहीं है. और पुष्टिप्रभुको भी फुरसत नहीं है तुम्हारे जैसे बेकार जीवोंके साथ गूढ़ संबंध बांधनेकी.

३५९. भक्तिवर्धिनीमें है **"यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते. बीजभावे दृढे तु स्यात् त्यागात् श्रवणकीर्तनात्. अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः. व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ न्यसेत् सदा. ततः प्रेम तथासक्तिः व्यसनं च यदा भवेत्. बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नापि नश्यति. स्नेहाद् रागविनाशः स्याद् आसक्त्या स्याद् गृहारुचिः. गृहस्थानां बाधकत्वम् अनात्मत्वं च भासते. यदा स्यात् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात् तदैव हि." "त्यागात् श्रवणकीर्तनात्"** यह श्रवण-कीर्तन भगवल्लीलाका भी होना चाहिये और सिद्धान्तोंका भी होना चाहिये. बालकोंको कहो कि आप कीर्तन करो तो हम सुनेंगे और वह न करें तो तुम रूपा पौरियाकी तरह गाने लगो. सिद्धान्तोंको गाओ. षोडशग्रन्थके धौल गाना शुरु कर दो. वह लोग भी भाग जायेंगे. इस तरह एक-दूसरेको संभालना होगा. "परस्परं देवो भव." परस्परके देव हो जाओ. दामोदरदासजीने गुसांईजीको नहीं टोका था कि "महाराज यह मार्ग हांसी-खेलको नांही ताप-क्लेशको है."

३६०. बालक सुनाये तो अपना सौभाग्य और न सुनाये तो तुम लोग गाना शुरु करो "मौन धर्युं छे सिद्धान्तो शिखववा, मठढ़ी धरी छे मनोरथीने रीझववा. छप्पन भोग धर्या छे पुष्टिप्रभुने, दुष्ट प्रवाहियोंने पुष्टिमां संकेलवा." जम कर गाओ. कदाचित् थोड़ी देर गुस्सा भी होंगे.

३६१. लेकिन यह तो प्रणयका झगड़ा है. द्वेषका नहीं. वैष्णव भी

श्रीवल्लभाचार्यके वंशज और बालक भी. एक नादसृष्टि और दूसरी बिन्दुसृष्टि. प्रेमसे झगड़ो.

३६२. बालक आये तब चरण पकड़ लो कि महाराज ग्रंथ समझाओ. भेंट ले जाते हो और सिद्धान्त नहीं समझाते तो कैसे चलेगा? बादमें या तो महाराज भेंटके लिये आना ही बन्द कर देंगे अथवा सिद्धान्त समझाने लगेंगे. और बालक भी तुम्हारेको कहेंगे कि चरणस्पर्श करने इकट्ठे हो जाते हो और सिद्धान्त नहीं सुनते-समझते? बीजभाव दोनोंका दृढ़ हो जायेगा.

३६३. एवं प्रवर्तितं चक्रम्.. यह तो सुधरनेका चक्र है. इस चक्रको प्रवर्तित हो जाने दो. थोड़ा बालक तुमको सुधारेंगे और बालकको तुम लोग. फिर देखो सारा पुष्टिमार्ग सुधर जायेगा.

३६४. अगर तुम लोग इस चक्रको प्रवर्तित नहीं करते तो महाप्रभुजी तुम्हें धिक्कारेंगे कि बेकार है तुम्हारा पुष्टिमार्गमें जीना.

३६५. इस तरह एक-दूसरेके पीछे लगोगे तो इस चक्करमें आ कर मार्ग सुधर जायेगा. उसके बाद अपने भीतर यह शुभ स्मृति जागेगी कि हम क्या जीव हैं, पुष्टि प्रभुसे बिछुड़े हुये हैं. किस प्रकारकी भक्ति करनेका उपदेश बालक करते हैं. किस प्रकारका उपदेश तुम झेल सकते हो और उसको झेल कर किस प्रकार पुष्टिप्रभुकी घरमें सेवा करनी है. तब ही तो बीजभाव दृढ़ होगा और इस गूढ़ तत्त्वको समझ सकोगे. नहीं तो यह प्रवचन बेकार गया.

३६६. सिद्धान्तको सिर्फ समझो ही नहीं उसको मानो, उसको व्यवहारमें लाओ. परन्तु तुम अकेले ही व्यवहारमें नहीं ला सकते. मैं

श्रीवल्लभाचार्यके वंशज और बालक भी. एक नादसृष्टि और दूसरी बिन्दुसृष्टि. प्रेमसे झगड़ो.

३६२. बालक आये तब चरण पकड़ लो कि महाराज ग्रंथ समझाओ. भेंट ले जाते हो और सिद्धान्त नहीं समझाते तो कैसे चलेगा? बादमें या तो महाराज भेंटके लिये आना ही बन्द कर देंगे अथवा सिद्धान्त समझाने लगेंगे. और बालक भी तुम्हारेको कहेंगे कि चरणस्पर्श करने इकट्ठे हो जाते हो और सिद्धान्त नहीं सुनते-समझते? बीजभाव दोनोंका दृढ़ हो जायेगा.

३६३. एवं प्रवर्तितं चक्रम्.. यह तो सुधरनेका चक्र है. इस चक्रको प्रवर्तित हो जाने दो. थोड़ा बालक तुमको सुधारेंगे और बालकको तुम लोग. फिर देखो सारा पुष्टिमार्ग सुधर जायेगा.

३६४. अगर तुम लोग इस चक्रको प्रवर्तित नहीं करते तो महाप्रभुजी तुम्हें धिक्कारेंगे कि बेकार है तुम्हारा पुष्टिमार्गमें जीना.

३६५. इस तरह एक-दूसरेके पीछे लगोगे तो इस चक्करमें आ कर मार्ग सुधर जायेगा. उसके बाद अपने भीतर यह शुभ स्मृति जागेगी कि हम क्या जीव हैं, पुष्टि प्रभुसे बिछुड़े हुये हैं. किस प्रकारकी भक्ति करनेका उपदेश बालक करते हैं. किस प्रकारका उपदेश तुम झेल सकते हो और उसको झेल कर किस प्रकार पुष्टिप्रभुकी घरमें सेवा करनी है. तब ही तो बीजभाव दृढ़ होगा और इस गूढ़ तत्त्वको समझ सकोगे. नहीं तो यह प्रवचन बेकार गया.

३६६. सिद्धान्तको सिर्फ समझो ही नहीं उसको मानो, उसको व्यवहारमें लाओ. परन्तु तुम अकेले ही व्यवहारमें नहीं ला सकते. मैं

भी अकेला व्यवहारमें नहीं ला सकता. हमको एक-दूसरेका सहायक बनना पड़ेगा. फिर देखो कि यह पुष्टिकी ध्वजा कितने ऊपर लहरायेगी! तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते.

३६७. तुम्हारा बीजभाव इतना दृढ़ हो जायेगा कि बादमें कोई भी आकर्षण तुम्हें पुष्टिमार्गसे गिरा नहीं सकेगा; तुममें दृढ़ आस्था जाग जायेगी.

३६८. षोडशग्रंथ भागवतके आधारपर उपदेशित हैं. वह सर्वाधिकारक हैं. ब्राह्मणाधिकारक ही नहीं हैं. ऐसा भी नहीं है कि यह सब ग्रंथ संस्कृतमें ही हों. नरसिंहलालजी महाराजकी टीका ब्रजभाषामें भी है. अगर संस्कृतमें समझनी हो तो किसी शास्त्रीके पीछे पड़ जाओ. लेकिन किसी भी प्रकार अपने ग्रंथ बांचना प्रारम्भ करो.

३६९. जैसे बालकोंके सामने गाते हो "मौन धर्युं छे सिद्धान्तो शीखववा" उसी प्रकार शास्त्रीजीके आगे भी दयारामभाइका पद गाओ "भागवत भणीने शुं कीधु ओ भाई. मारे जंतु मणी अजवाळे, तेम तें उदर पोषी लीधुं.. पारसमणिनुं पात्र पाणीमांने घेर घेर भिक्षा मांगे".

३७०. बादमें धीरे-धीरे ऐसा दबाब पड़ेगा कि बालक और शास्त्रीजी सिद्धान्तोंका उद्घोष करने लगेंगे.

३७१. इस प्रकारका परस्पर अभिगम रखेंगे तो ही तो अपन् पुष्टिप्रभुकी ओर बढ़ सकेंगे.

३७२. इस मौलिक विवरणके बाद भक्तिवर्धिनीके श्लोकोंका भाव समझनेका प्रयत्न करेंगे.

३७३. इस ग्रंथमें ग्यारह श्लोकोंकी संख्याको टीकाकारोंने लाक्षणिक रीतिसे बताया है कि अपनी ग्यारह इन्द्रियां परमात्माकी ओर बढ़ें इस कारण ग्यारह श्लोकोंमें उपदेश दिया गया है.

३७४. यह ग्रंथ मूलतः कितने अधिकारियोंको उद्देशित करके उपदेश देता है?
पहले तो दृढ़ बीजभाव और अदृढ़ बीजभाव. 'दृढ़ बीजभाव' अर्थात् जिनकी भगवद् अनुरक्ति स्थिर हो गई है और विषयासक्ति क्षीण हो गई है.

३७५. अब पहले एक बात समझ लो. विषयविरक्तिके कारण कृष्णमें अनुरक्ति होना (यह अपने मार्गकी कथा नहीं है) और कृष्णानुरक्तिके कारण विषयविरक्ति होना. इन दोनोंमें अन्तर है.

३७६. तुलसीदासजी कहते हैं "तिया मुई घर सम्पति नासी. मूंड मुंडाय भये संन्यासी." पत्नीकी देह छूटी. घर सम्पतिका नाश हो गया तब संन्यासी बने तो क्या बने? यह अलग मार्ग है. यह अभिनंदनीय हो सकता है परन्तु यह इतना प्रशस्ततर मार्ग नहीं है.

३७७. भगवदनुरक्ति इतनी बढ़ जाये कि उसके प्रभावके कारण विषय क्षीण लगने लगें. जैसे सूर्य उदित होते ही टिमटिमाते तारे गायब हो जाते हैं. सूर्यका प्रकाश इतना प्रबल होना चाहिये कि विषयोंकी जगमगाहट क्षीण हो जाये. अपना भक्तिमार्ग तो ऐसा है.

३७८. ध्यानसे समझो. सिद्धान्तमुक्तावलीमें क्या कहा गया है **"चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्धयै तनुवित्तजा. ततः संसार-दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्म-बोधम्"**

संसारदुःखकी निवृत्ति किस प्रकार? कृष्णमें चित्त चौंट जानेके कारण.

३७९. "बुढ़ापेमें गोविन्दके गुण गायेंगे" लेकिन बुढ़ापेमें गुण गानेके अतिरिक्त तुम्हारे पास चारा ही क्या होगा? कोई तुम्हारे पास फरकेगा नहीं तो गुण ही गाओगे. यह पुष्टिभक्ति नहीं है. अपनी भक्तिमें तो बचपनसे ही गोविन्दके गुण गाओ. जिस समय विषय तुम्हें आकर्षित करनेमें समर्थ हों, तुम्हारी आंख स्पष्ट तारोंको देख सकती हों, ऐसा अंधकार हो.

३८०. उस समय विचारो कि मेरी आंख, इन क्षुद्र तारोंको देखनेके लिये नहीं खुली हैं. मुझे तो सूर्योदयकी प्रतीक्षा करनी है. मेरी बुद्धिको प्रकाशित करनेवाला कृष्ण कब प्रकट होगा? मेरे हृदयके गगनमें जब पुष्टिभक्तिका उषाकाल प्रकटेगा तब विषयोंकी चकमक अपने आप धीमी पड़ जायेगी.

३८१. "परमानन्द रहत यों घरमें जैसे रहत बटाऊ" यह भाव कृष्णानुरक्तिके कारण जागता है. ऐसा भाव जब जागेगा तो ही तो पता चलेगा कि भक्ति कितनी मधुर है!

३८२. बीजभाव दृढ़ होनेके बाद घरमें रहो अथवा बाहर, कुछ अन्तर नहीं पड़ता. तुम्हारा कार्य मात्र श्रवण-कीर्तनसे ही चल जायेगा. बीजभाव दृढ़ होनेके कारण वह प्रभु तुम्हारे पीछे-पीछे फिरेगा और तुम्हें खोजता आयेगा.

३८३. जिनका बीजभाव दृढ़ नहीं है वह व्यावृत्त हो सकता है अथवा अव्यावृत्त. जब तुम अविक्षिप्त, अप्रतिबद्ध मनको, जो दूसरेको पीड़ादायक न हो उस रीतिसे प्रभुमें लगा सकते हो तथा ऐसे

संसारदु:खकी निवृत्ति किस प्रकार? कृष्णमें चित्त चौंट जानेके कारण.

३७९. ''बुढ़ापेमें गोविन्दके गुण गायेंगे'' लेकिन बुढ़ापेमें गुण गानेके अतिरिक्त तुम्हारे पास चारा ही क्या होगा? कोई तुम्हारे पास फरकेगा नहीं तो गुण ही गाओगे. यह पुष्टिभक्ति नहीं है. अपनी भक्तिमें तो बचपनसे ही गोविन्दके गुण गाओ. जिस समय विषय तुम्हें आकर्षित करनेमें समर्थ हों, तुम्हारी आंख स्पष्ट तारोंको देख सकती हों, ऐसा अंधकार हो.

३८०. उस समय विचारो कि मेरी आंख, इन क्षुद्र तारोंको देखनेके लिये नहीं खुली हैं. मुझे तो सूर्योदयकी प्रतीक्षा करनी है. मेरी बुद्धिको प्रकाशित करनेवाला कृष्ण कब प्रकट होगा? मेरे हृदयके गगनमें जब पुष्टिभक्तिका उषाकाल प्रकटेगा तब विषयोंकी चकमक अपने आप धीमी पड़ जायेगी.

३८१. ''परमानन्द रहत यों घरमें जैसे रहत बटाऊ'' यह भाव कृष्णानुरक्तिके कारण जागता है. ऐसा भाव जब जागेगा तो ही तो पता चलेगा कि भक्ति कितनी मधुर है!

३८२. बीजभाव दृढ़ होनेके बाद घरमें रहो अथवा बाहर, कुछ अन्तर नहीं पड़ता. तुम्हारा कार्य मात्र श्रवण-कीर्तनसे ही चल जायेगा. बीजभाव दृढ़ होनेके कारण वह प्रभु तुम्हारे पीछे-पीछे फिरेगा और तुम्हें खोजता आयेगा.

३८३. जिनका बीजभाव दृढ़ नहीं है वह व्यावृत्त हो सकता है अथवा अव्यावृत्त. जब तुम अविक्षिप्त, अप्रतिबद्ध मनको, जो दूसरेको पीड़ादायक न हो उस रीतिसे प्रभुमें लगा सकते हो तथा ऐसे

ही तन धन गृह इत्यादि भी लगा सकते हो तब तो तुम अव्यावृत्त; नहीं लगा सकते तो व्यावृत्त.

३८४. जब लगा सकते हो तो **''गृहे स्थित्वा स्वधर्मत: अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभि:''** पूजनसे माहात्म्यका ज्ञान जागेगा. और श्रवणादि (श्रवण कीर्तन वंदन पादसेवन अर्चन) क्रियाओंसे तुम्हारे माथे बिराजते ठाकुरके साथ सम्बन्ध बांधोगे तो यह सब क्रियायें धीरे-धीरे कब हृदयमें भावरूपसे सुदृढ़ हो गईं इसका तुम्हें पता ही नहीं चलेगा.

३८५. कितने ही व्यावृत्त होते हैं. उनकी लाचारी है. उनका धन तन परिवारजनोंमें व्यावृत्त होता है. घर अथवा संजोग अनुकूल नहीं होते. ऐसे लोगोंको सेवा पधरानेकी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये. परन्तु **''व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ न्यसेत् सदा''** प्रसादी ही खानेका आग्रह मत रखो. भगवत्कथाका श्रवण स्मरण कीर्तन करो. क्योंकि प्रभुको धरानेलायक सेवोपयोगी फॅक्टर्स अभी आपके पास नहीं हैं.

३८६. उत्तम पक्ष तो यही है कि प्रभुको घरमें पधराओ. जो यह सम्भव न हो तो अपने चित्तको प्रभुमें पधराओ.

३८७. किस प्रकार? श्रवण मनन कीर्तन स्मरण इन सब प्रक्रियाओंसे तुम्हारे अन्दर प्रेम उदित हो जायेगा. इस प्रेमके कारण तुम्हें विषय अच्छे नहीं लगेंगे. इसके पश्चाद् आसक्ति होने पर लगेगा कि यह घर किस कामका? महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि गृहस्थिति तो तब ही उत्तम है जब तुम उसमें रह कर सेवा कर सको, कुछ भगवत्कार्य कर सको.

३८८. गुसांईजीसे एक बार सेवामें श्रीठाकुरजीको श्रम हो गया. इस

कारण गुसांईजीको वैराग्य आ गया कि प्रभुको श्रम दे कर घरमें रहनेसे क्या लाभ? गिरिधरजीको आज्ञा करी कि मेरे वस्त्र भगवा रंगमें रंग दो. मुझे संन्यास लेना है. तब श्रीनवनीतप्रियाजीने भी गिरिधरजीको आज्ञा करी कि मेरो तनिया भी भगवा रंगमें रंग दो. बादमें गुसांईजीने यह विचार छोड़ दिया. गृहस्वामी, जिसके सुखके कारण घरमे रहा जा रहा है, उसे कदापि किसी समय असुख हो जाय तो गृहत्याग जैसे असुख भी न हो उसकी सावधानी रखनी चाहिये.

३८९. बहुतसे ठाकुरजीको छोड़ कर ब्रजयात्रामें जाते हैं और कहते हैं कि वहां ठाकुरजीको कहां ले जायें? यात्रा करें कि सेवा करें? तो वहां खोजने किसे जा रहे हो? जिसे खोजने जा रहे हो उसे तो यहां छोड़े जा रहे हो!!

३९०. गुसांईजीने भी दिखाया कि एक तो परिश्रम करवाया और पीछे श्रीठाकुरजीको छोड़ना! इसे विचार करके संन्यास लेनेका विचार छोड़ दिया कि हमें तो भक्ति करनी है.

३९१. घरमें सेवा करनेकी सहूलियत प्रत्येकको तो प्राप्त होती नहीं. जो उपलब्ध न हो तो **''भगवता सह स्थित्वा भगवत्कार्याय वा अन्यथा न स्थातव्यम्''**. उसे घरमें अरुचि लगेगी, सब कुछ अनात्म लगेगा.

३९२. कोई मेहमान सुबह घरमें आनेवाला हो तो रात्रिमें नींद उड़ जाती है. बादमें उसकी प्रतीक्षा करते समय निकल जाता है कि अब तीन घंटे बाकी रह गये हैं, अब एक घंटा बाकी रह गया है इत्यादि. प्रतीक्षाकी घड़ी ही ऐसी होती है. प्रतीक्षाका आनन्द एवं ताप ऐसा ही होता है. और प्रतीक्षारहित अपना

पूरा जीवन व्यतीत हो जाता है. सौ-सौ वर्ष बीत जाते हैं. लेकिन पांच मिनटकी प्रतीक्षामें ऐसा लगता है कि **''आसक्त्या स्याद् गृहारुचिः''** घरमें कृष्णकी प्रतीक्षा करनी और उस प्रतीक्षाके कारण घरमें अरुचि हो जायगी. उस समय आसक्ति व्यसनका रूप ले लेगी. **''यदा स्याद् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात् तदैव हि.''** उस समय ही तुमको मानसी सिद्ध हो जायगी. पत्ता भी हिलेगा तो लगेगा कि वह आया वह आया!

३९३. व्यसन होनेके बाद फिर घरमें रहना जरूरी नहीं है. घरमें कृष्ण कहां है? भगवान्के साथ भगवत्कार्य करनेके लिये रह रहे हो तो उसका लाइसेन्स् दे रहे हैं महाप्रभुजी. नहीं तो **''गृहं सर्वात्मना त्याज्यम्''**.

३९४. **''तादृशस्यापि सततं गेहस्थानं विनाशकम्''** व्यसनदशा जिसे सिद्ध हो गई हो वह अगर सतत घरमें रहे तो उसे बाधक होता है. लेकिन यह सब जल्दबाजी हमें नहीं करनी चाहिये. व्यसनदशा सिद्ध हो तब ही करनी है.

३९५. कृष्णविरही हो कर कृष्णको खोजने जाओगे तो तुम्हें विरहभक्तिका दान मिलेगा.

३९६. परन्तु बहुतसे प.भ. घर छोड़ कर ब्रजमें जाते हैं और वहां ब्याजका धंधा करते हैं. तुम ब्रजमें तदेकार्थ मानस हो कर रहने गये हो कि ब्याजार्थैक मानस होनेके लिये. ऐसे प.भ.का धंधा भी बड़ा ही होता है.

३९७. तदैकार्थमानस हो कर घर त्याग करो तो वह महाप्रभुजीको अभिप्रेत नहीं है. वह तो आज्ञा करते हैं कि **''त्यागे बाधकभूयस्त्वं**

दु:संसर्गात् तथान्नत:'' अज्ञानतासे किये हुये त्यागमें दुष्टसंग और अन्नदोष बाधक होता है.

३९८. मैने एक स्वामी कृष्णप्रेमानंदकी आत्मकथा लिखी थी वह मिले तो बांचना. उसे गुरुने कहा कि ''तुम कृष्णकी अनुभूति करनेके लिये एकान्तमें वास करो.'' कृष्णप्रेमानंद गुजरातके किसी गांवके बाहर बसे. वहां उसे हरिहरानंद मिले. उन्होंने समझाया कि खाली कृष्णभक्ति तो सांप्रदायिक संकीर्णता है. हरि=हर दोनोंकी भक्ति करनी चाहिये. कृष्णकी तो क्षुद्र कथा है. अपनेको तो मूल ब्रह्म पकड़ना चाहिये. अब कृष्णप्रेमानंद ब्रह्मानंद बन गया. प्रवचन शुरु कर दिये. भीड़ लगने लगी. बहुत बड़ा आश्रम बन गया. जगह-जगहसे आमंत्रण आने लग गये. वह एअर्पोर्टसे एअर्पोर्ट, भाषण देनेके लिये जाने लग गये. अब हरिहरानंदके आश्रमवाले बोले कि आप कोई अपरस तो पालते नहीं हो एअर्होस्टेस्के हाथका भी खाते हो. ऐसा कोई संन्यास होता है? वहां फिर कोई मानवानंद मिले. उनके साथ वह इंग्लॅण्ड् जाते है. वहां अनेक चेले बना लेते है. वहां कोई कहता है कि मानव तो क्रूर होते हैं. उसे वह पशुओंकी एजेन्सी दे देते है कि तुम पशुओंको बचाओ. पशुआनन्द होओ. कोई कहता है कि जंगल कट रहे हैं तुम जंगलोंको बचाओ. वृक्षानंद होओ. तब वहां उसके गुरु आते है और कहते है अरे मूर्खानन्द! तू जाग. तूने शिष्येषणाके कारण कितना संग बढ़ा लिया और तू कहांसे कहां पहुंच गया?

३९९. शास्त्रमें पुत्रेषणा लोकेषणा और वित्तेषणा छोड़कर संन्यास लेनेकी आज्ञा है. लेकिन उन्हें छोड़नेके बाद शिष्येषणा अधिक बढ़ जाती है. शिष्योंके लिये वित्तेषणा भी रखनी पड़ती है. अरे समस्त एषणायें बढ़ीं कि घटीं?

४००. अब क्या करना? जब तुम्हारेसे घरमें सेवा नहीं होती हो तो **''अत: स्थेयं हरिस्थाने तदीयै: सह तत्परै:''** ऐसे किसी भगवदीयको ढूंढ लो. उसके साथ स्नेहसम्बन्ध बांध लो और उसकी बहिरंग सेवामें सहायता करो.

४०१. लेकिन उसके घरमें मत घुस जाओ. दूर-पासका विवेक रखना चाहिये. हम गोस्वामी बालकोंके यहां भी बहुतसे वैष्णव इसी कारणसे आये थे लेकिन उन्होंने विवेक नहीं रखा. बहुतसे भीतर घुस गये और कुछ जो इतने भीतर कि उन्होंने बालकोंको गाली देना ही चालू कर दिया. यह होते हैं अतिदूर अतिपास रहनेके परिणाम. उन्होंने महाप्रभुजीकी आज्ञा नहीं अनुसरी. **''अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति''**. बहुत पास भी नहीं कि जिससे चित्तमें दोष दिखाई दें.

४०२. पास रह कर एक-दूसरेके दोष मत देखो. अरे यह तो दिव्य सम्बन्ध है. भक्तिको खिलानेके लिये. एक कथा करे दूसरा श्रवण करे. एक सेवा करे दूसरा बहिरंग सेवामें सहयोग दे.

४०३. ऐसी स्थितिमें क्या होगा? महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं **''सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्ति: दृढा भवेत्''**. इस प्रकार सेवा अथवा निभा सकते हो तो सेवा और कथा में आसक्ति दृढ़ होनेपर उसका कभी नाश नहीं होगा. **''यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापि..''**

४०४. तुम्हें लगे कि इसमें कोई किसीको ठग तो नहीं लेगा. अरे ठगनेवाले कहां नहीं हैं? मंदिरकी सेवामें भी ठगे जाते हैं. गये थे सहयोग देने लेकिन पैसे देनेवाले वित्तार्थी बन गये. जब तुम सभान सजग नहीं होगे तो ठगे तो जाओगे ही. जब तुम सत्संग करनेवाले और सत्संग खोजनेवालों से सिद्धान्तकी

बात करोगे-सुनोगे तो कोई किसीको नहीं ठग सकेगा. और सिद्धान्त विहीनको तो लोग ठग ही लेंगे.

४०५. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि हरिके चरण समझ कर पकड़ लो वह तुम्हारी रक्षा करेंगे. और चरणकी कितनी सुंदर व्याख्या महाप्रभुजी करते हैं: प्रभुके आधिभौतिक चरण = सत्संग = भागवत्; प्रभुके आध्यात्मिक चरण = ज्ञान = भक्ति; प्रभुके आधिदैविक चरण = तुम्हारे माथे बिराजते श्रीठाकुरजीके चरण.

४०६. इन चरणोंको पकड़ो परन्तु सिद्धान्तको समझ कर पकड़ो. किस प्रकार

(१) सत्संग करनेवाले अथवा भागवत बांचनेवाले उसका आजिविकाकी तरह तो उपयोग नहीं करतें?

(२) ज्ञान और भक्ति करनेवाले जनतामें उसका प्रदर्शन तो नहीं करतें?

(३) तुम्हारे ठाकुरजीके दोनों चरण तो तुम्हारे हृदयमें पधरानेके लिये हैं, दुनियांको दिखानेके लिये नहीं.

४०७. यह भक्ति क्या है? भक्त वैकुण्ठमें तो जा नहीं सकता. जाय तो उसका शोक प्रस्ताव पास हो जाये. इस कारण भगवान् हमारे लिये जगत्में आ जाते हैं. हम उसे घरमें पधरा कर भक्तिसे रिझायें तब वह पुष्टिभक्ति है. भक्ति जीवन जीनेकी एक कला है. जो तुम्हें भगवान् पुष्टिके रंगमें रंग रहा है. हृदयपर भावोंको चित्रित कर रहा है. और इस रंगे हुये हृदयसे तुम ठाकुरजीको भक्तिके रंगसे चित्रित करोगे और जो स्वरूप प्रकट होगा वह तुम्हारे हृदयकी निर्मल आरसीमें प्रतिबिंबित हो जायेगा.

४०८. पुष्टिजीव और पुष्टिपरमात्मा, इसे चित्रित करनेके लिये इस दिव्य

कलाकृतिमें प्रभु आधेमें तुमको चित्रित करते हैं और आधे चित्रमें तुम उसे.

४०९. यह एक जीवन जीनेकी रीति है. जैसे जगत्में जीते हैं परन्तु जगदीशको भूलते नहीं हैं और जगदीशको जान-मान कर जगत्को छोड़ नहीं देते हैं. जगत्में जगदीशको भूले बिना भली प्रकार जान कर चाहना ही भक्ति है.

(१/क) "पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोर्वधनधरसों पूछें जो "महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी... सो हम कौनको अधिकार देके बीगार करें? तासों आपु कहो ताको अधिकारी (ट्रस्टी) करें. तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो "हमहु कौंन जीवको बिगार करें? जो कोई अधिकार लेयगो (ट्रस्टी बनेगो) ताको बिगार होयगो! तासों तुम एक काम करों जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाकों अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाको गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो."

(**श्रीगोवर्धननाथजी,** ८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता, प्रसंग-१०)

(ख) सो एक दिन एक वैष्णवने किसोरीबाईकों कछू सामग्री दीनी हती. तब किसोरीबाईने सिद्ध करिके श्रीठाकुरजीकों भोग समर्प्यो. ता दिन श्रीठाकुरजी आरोगवेकों पधारे नाहीं. तब किसोरीबाई मनमें बहोत खेद करन लागी. तब श्रीठाकोरजी बोले जो तेनें मेरेलिये सामग्री क्यों लीनी? सो हम कैसे आरोगे?

भावप्रकाश : यामें यह जताये जो औरकी सत्ता-सामग्री अपने श्रीठाकोरजीकों आरोगावनी नाहीं. और कछू वैष्णवपेतें ले के श्रीठाकुरजीकों विनियोग न करावनो. सो श्रीठाकुरजी अंगीकार न करें.

(२५२ वै.वार्ता, किसोरीबाई वा.प्र.२)

(२) जो कटोरी (गहने) धरिके सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आप ही के द्रव्यकुं आरोगे सो आप ही को भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं अरु मेरो सेवक भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहूं न खायगो जो खायगो सो महापतित होयगो. ताते वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो याकेलिए गोअनूकों खवायो अरु श्रीयमुनाजीमें पधरायो. यह सुनिके सब वैष्णव चुप होय रहे.

(**महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य.** घरुवार्ता-३)

(३) ...श्रीआचार्यजीको वैष्णवने आई कही, "महाराज! श्रीद्वारकानाथजी वैभव

सहित पधारे हैं." ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाड़े हते! (तब) श्रीगोपीनाथजी कहें "लक्ष्मी सहित नारायण पधारे हैं!" तब श्रीआचार्यजी कहे तब श्रीआचार्यजी कहें "वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो है? (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे, तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नाश जायगो". तब श्रीआचार्यजी कहें "हमारो मारग तो ऐसोई है."

(**श्रीगोपीनाथप्रभुचरण,** ८४ वैष्णव वार्ता, दामोदरदास संभलवारेकी वार्ता).

(४/क) धनादिकी कामनाकी पूर्तिकेलिये जो शास्त्रविहित श्रवण-कीर्तन-सेवा आदि किये जाते हैं उनको कर्ममार्गीय समझना चाहिये अपनी आजीविका चलानेकेलिये धनोपार्जनके रूपमें जो हैं उनको तो खेती-बाड़ी जैसे व्यवसायकी तरह 'लौकिक कर्म ही कहना चहिये (धर्म-भक्ति सर्वथा नहीं). मलप्रक्षालानार्थ गंगाजलका उपयोग करनेवालेको उसके मलकी सफाईसे अधिक गंगास्नानका फल मिलता नहीं है. इतना ही नहीं ध्यान देनेलायक बात यह है कि गंगा जैसी पवित्र नदिके जलका ऐसा घृणित कार्यकेलिये उपयोग करनेके कारण वह पापी बनता है इसी तरह प्रभुकी सेवा-कथाके माध्यमसे पैसे कमानेवालेको सेवा-कथाका कोई भी (धार्मिक-भक्तिमार्गीय) फल तो प्राप्त नहीं ही होता है प्रत्युत ऐसे अधम आचरणके कारण वह पापका ही भागी होता है.

(**श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण.** भक्तिहंस)

(४/ख) तब श्रीगुसांईजी आपु कहे : "जो हम कौनसे जीवको कहें, जो कौनसे जीवको बिगार करें! सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारनो तो तत्काल है! तासों श्रीगोवर्धनधरको अधिकार (ट्रस्टीपद) कौनकों देय? कौनको बिगार करें?...पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो "महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी... सो हम कौनको अधिकार देके बिगार करें? तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाको अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो".

(**श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण,** ८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता प्रसंग-१०)

(५) अपने सेव्य-स्वरूपकी सेवा आप ही करनी और उत्सवादि समयानुसार अपने वित्त अनुसार करने वस्त्रभूषण भांति-भांतिके मनोरथ करी सामग्री करनी.

(**श्रीगोकुलनाथप्रभुचरण** २४ वचनामृत)

(६) यहां भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें सेवोपयोगी स्थानके रूपमें निज घरको विधान उपलब्ध होयवेसूं, अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा छोड़के दूसरी जगह (अर्थात् हवेलीनूंमें, जैसे आजकल, भेट-सामग्री पधराके नित्य या मनोरथनकी झांकी कर लेनो वैष्णवनूने पुष्टिमार्गमें परमधर्म मान लियो है वैसे) भगवत्सेवा करवेवालेनूंकुं कभी भक्ति सिद्ध नहीं हो सके हे.

(**श्रीवल्लभात्मज-श्रीबालकृष्णजी,** भक्तिवर्धिनीव्याख्या-२)

(७) जब सन्तदासको सगरो द्रव्य गयो तब श्रीठाकुरजीकी सेवामें मंडान श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों राखे और श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते चौबीस टका पूंजी करि कोडी बेचते. सो श्रीठाकुरजीकी पूंजीमेंते तो कासिदको दियो न जाई सो कमाईको टका दिये. तब इनकी मजूरीको राजभोग न भयो सो महाप्रसाद हू न लियो. टकाके चूनको न्यारो भोग धरते सो राजभोग जानते, महाप्रसाद लेते, ओर नित्यको नेग बहोत श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों होतो ताते आपुनी राजभोगकी सेवा सिद्ध न भई (जाने). कासिदको दिये सो नारायणदासको लिखें जो "तुम्हारी प्रभुतातें एक दिन राजभोगको नागा पर्यो जो मेरी सत्ताको भोग न धर्यो!" या प्रकार सन्तदास विवेकधैर्याश्रयको रूप दिखाये. विवेक यह जो श्रीगुसांईजीको हूंडी पठाई-आपुनी सेवा न भई-राजभोगको नागा माने, धैर्य यह जो श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते खान-पान न किये. आश्रय यह जो मनमें आनन्द पाये-दुःखक्लेश न पाये.

(**श्रीहरिराय महाप्रभु ,** भावप्रकाश ८४ वैष्णवनकी वार्ता-७६)

(८) पारिश्रमिकके रूपमें वित्त दे के कोई दूसरेके द्वारा सेवा कराई जावे तो चित्तमें अहंकार तो बढ़े ही है परन्तु ऐसी खरीदी भई सेवासु चित्त भगवानूमें कभी चोंट नहीं सके है. भगवत्सेवार्थ कोई दूसरेसूं पारिश्रमिकके रूपमें धनादिक लिये जावेपे तो, जैसे पंडा-पुरोहितनुंकुं यज्ञ-यागादिको फल नहीं मिले है परन्तु यजमाननुंकुं ही मिले है वेसे ही सेवाकर्ताकी सेवा निष्फल बन जाय हे शंका: यजमान जैसे दक्षिणा दे के पुरोहितनूके द्वारा यज्ञयाग करा लेवे है वैसे ही भगवत्सेवा (आजकल जैसे पुष्टिमार्गीय हवेलीनूंमें वैष्णवगण गुसांई-मुखिया-भीतरिया-समाधानीकी बटालियनसूं करवा लेवे हें वा तरह:अनुवादक) करा लेवेमें क्या बुराई है? समाधान: या शंकाको ये समाधान जाननो जो कर्ममार्गमें ऐसो करनो विहित होवेसुं पुरोहितनूसूं कर्म सम्पन्न करा लेनो आपत्तिजनक नहीं है. भक्तिमार्गमें, परन्तु, या तरहसूं भगवत्सेवा करा लेवेको कहीं विधान उपलब्ध नहीं होयवेसूं कोई दूसरेकुं धन दे के सेवा करानो अनुचित ही हे. भक्तिमार्गमें तो भगवदुक्त प्रकारसूं (निज घरमें निज परिजननूके सहयोगद्वारा निजी तन-मन-धनसूं ही भगवत्सेवा करनी चहिये.

(**गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण,** सिद्धान्तमुक्तावली विवृतिप्रकाश-२)

(९) लौकिक अर्थकी इच्छा राखिके जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय सो सर्वथा क्लेश पावे हे. इतने कछू भेट-सामग्री मिलि जाये ऐसे लाभकेलिये पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो 'पांखड़ी' ओर 'देवलक' कह्यो जाय हे. तासूं लाभपूजार्थ सिवाय जामें निषेध नहीं हे ऐसी रीतिसूं "मेरो लौकिक सिद्ध होय" ऐसी इच्छासूं जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो 'लोकार्थी' कह्यो जाय है.

(**नि.ली.गो.श्रीनृसिंहलालजी महाराज,** सिद्धान्तमुक्तावली-टीका श्लोक १६-१७)

(१०) जो श्रीवल्लभकुल हैं वे तो आपुने सेव्यस्वरूपपें कैसो स्नेह राखत हैं जो एक ठौर द्रव्यकी ढेरी करो और दूसरी ठौर श्रीठाकुरजीकों पधरावो तो श्रीवल्लभकुल वा द्रव्यकी ओर देखेंगे हु नाहीं अरु श्रीठाकुरजीकों अतिस्नेहसों पधराय लेंगे. परि जो या कलिको जीव है वाकुं तो द्रव्य बहुत प्रिय है. तासों वो तो श्रीठाकुरजी सन्मुख हु नाहीं देखेगो अरु केवल वैभवकुं देखेगो अरु मोहित होय जायेगो.

(**नि.ली.गो.श्रीमट्टुजी महाराज,** ३२ वचनामृत वचनामृत-५)

(११) श्रीउदयपुर दरबारकुं आशीर्वाद! याके द्वारा सूचित कियो जावे हे कि चल-अचल सम्पत्तिके आर्थिक तथा स्वामित्वकी व्यवस्थाके बारेमें योग्य व्यक्तिनूकी एक सलाहकार समिति नियुक्त कर ली गई हे सेवा आदि

विषयनूमें पुरातन तथा प्रवर्तमान प्रणालिके अनुसार काम कियो जायेगो ओर यदि पुरातन परम्पराको बाध न होतो होयगो ओर समिति कोइ तरहके सुधारकी इच्छा रखती होयगी तो ऐसे सुधार भी स्वीकारे जायेंगे. ओर श्रीठाकुरजीको द्रव्य अपने व्यक्तिगत उपयोगमें नहीं वापर्यो जायेगो जेसी कि परम्परा आज भी हे ही ओर याकुं निभायो जायेगो. तो भी मेरे पूर्वजनूके समयसूं चले आ रहे मेरे स्वामित्वके हक्क वा ही तरह कायम रहेंगे.

(**गोस्वामी तिलकायत नि.ली.गो.श्रीगोवर्धनलालजी महाराज, श्रीनाथद्वारा,** डेक्लेरेशन मिति भाद्रशुक्ला पञ्चमी वि.सं.१९४८=ता.५-९-१८९३)

(**१२**)...या ही तरह अपने यहां जो सन्मुखभेंट धरी जाय हे वो भी देवद्रव्य होवे हे; और वा सामग्रीकुं काममें नहीं लियो जाय है. श्रीगोकुलनाथजी और श्रीचन्द्रमाजी के घरमें आज भी ये नियम पाल्यो जाय हे. वहां जो सन्मुखभेट आवे हे, वाकुं कीर्तनीया-महावनीया ले जावे हे. वो वल्लभकुलको श्रीयमुनाजीको पंडा हे. दूसरो कोई वाको अनुकरण करे तो वो अनुचित है...हम श्रीनाथजीके सामने जो सन्मुख भेंट धरे हैं वो श्रीमहाप्रभुजीकी पादुकाजीकुं घरें हैं फिर भी वो आभूषणनूमें वापरी जावे है, सामग्रीमें नहीं. सन्मुखभेंट धरवेमें बहोत अनाचार होवे है. या तरहसूं आयो द्रव्य 'देवद्रव्य' बने हे...वाकुं लेवेवालेकी बुद्धि बिगड़े बिना नहीं रहे है.

(**नि.ली.गो.श्रीरणछोड़लालजी महाराज, राजनगर,** वचनामृत.४८४-८७).

(**१३**) महाराजकुं जो आमदनी वैष्णव आदिनूसूं होवे हे वामेंसूं घरखर्चाके रूपमें महाराज ठाकुरजीकी सेवाको खर्चा निभावें हें. ठाकुरजीकेलिये चल या अचल सम्पत्ति अलगसूं निकालके वामेंसूं ठाकुरजीकी सेवाको खर्च निभायो नहीं जावे हे. ठाकुरजीके वैभवको, नेगभोगको, आभूषण-वस्त्र आदिको खर्च महाराज स्वयं अपनी आमदनीके अनुसार निभावे हें... ठाकुरजीके सन्मुख भेंट धरी नहीं जा सके... ठाकुरजीकी भेंट देवमन्दिरमें भेजनी पड़े हे महाराज वा भेंटकुं अपने उपयोगमें ला नहीं सकें.

(**नि.ली.गो.श्रीवागीशलालजी महाराज, अमरेली,** श्रीवागीशलालजीके आम-मुखत्यार:"अमरेलीहवेली व्यक्तिगत है या सार्वजनिक" मुद्देपर सन्१९०९-१०में गायकवाडी बड़ौदा राज्यकी कोर्टमें दी गई जुबानी)

(**१४**) जैसे अपने पूर्वपुरुष स्वयं अपने धर्मके सत्यस्वरूप तथा शुद्धाद्वैतसिद्धान्त कुं पूर्णतया समझके वैष्णवधर्मको यर्थाथ उपदेश लोगनकुं देते हते; और मध्यवर्ती कालमें जो सम्पत्ति आदिके कारणनूसूं हमने बहोत हद तक छोड़ दिये हें; या कारणसूं अधिकांश लोगनूमें साधारण सेवा और केवल वित्तजा भक्ति की ही रूढ़िके अनुसार जानकारी बच गयी हे.

(**पञ्चमगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी, कामवन** मुंबईके वैष्णवनकुं लिखित पत्र:'आश्रय' अप्रिल ८७ के अंकमें प्रकाशित)

(**१५**) वकील: यदि कोई भी पुष्टिमार्गीय मन्दिरमें वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवा और नेग-भोग केलिये और श्रीठाकुरजीकी सेवाकुं निभावेकेलिये; भेंट आदि दे के वित्तजा सेवा करते होंय और वा मन्दिरमें तनुजा सेवा भी करते होंय तो वो "मन्दिर पुष्टिमार्गीय नहीं होवे" ऐसे आपको कहनो हे?

पू.पा.महाराजश्री: पुष्टिमार्गीय वैष्णवनूकेलिये स्वतन्त्रतया तनुजा या वित्तजा सेवा करवेकी कोई प्रक्रिया नहीं हे. और ऐसी सेवा की जाती होय तो वाकुं साम्प्रदायिक मन्दिर नहीं कह्यो जा सके.

(**नि.ली.गो.श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज सुरत** "नड़ियादकी हवेली वैयक्तिक हे या सार्वजनिक" विवादमें पुष्टिमार्गके विशेषज्ञ साक्षीके रूपमें दी जुबानी)

(**१६**) हमारा प्रमुख सिद्धान्त है 'असमर्पित त्याग'. उत्तम उपाय तो यही है कि घरमें जो भी रसोई बने वह प्रभुको भोग धरके बादमें ही महाप्रसाद लिया जाय. ... जहां तक असमर्पितका त्याग नहीं होगा वहां तक बुद्धि अच्छी नहीं हो सकती. सानुभावता कब सिद्ध हो सकती है? जब हमारी बुद्धि निर्मल हो ... आज हम हीरे (घरमें बिराजते सेव्य प्रभु) को परख नहीं सकते. सच्चे हीरेको जौहरी ही परख सकता है. स्थिति क्या है कि हम जूठे हीरेको सच्चा मानकर उसीके पीछे (हवेली-मन्दिरोंमें) दौड़ लगा रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने तो निधिरूप सच्चा हीरा हमको दिया है. भगवान् गीतामें कहते हैं कि "दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्". भगवान्को पहचाननेकेलिये तो दिव्यता प्राप्त होनी चाहिये. दिव्यता ही आत्मबल है. ... अतः

मेरा तो आप लोगोंसे साग्रह अनुरोध है कि आत्मबल प्राप्त करनेकेलिये अपना कुछ दैनिक नियम बनाईये. षोडशग्रन्थके पाठका नियम लीजीये.

(**द्वितीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा,** श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत ७, पृष्ठ.१२४)

(१७/क) और जब जनरल पब्लिक ट्रस्ट है तब ठाकुरजीकुं गोस्वामीके सम्बन्धसूं पृथक् करके, ठाकुरजीकुं सब सम्पत्ति अर्पण करके अर्थात् भेंट करके रिलीजिअस एंडॉमेन्टके रूपमें भये वे ट्रस्ट हैं. ऐसी अवस्थामें इन ट्रस्टनूसूं जो नेग-भोग चलायो जावे है, वो देवद्रव्यसूं चलायो जा रह्यो है. देवद्रव्यको उपभोग करनेवालो अन्तमें देवलक ही होवे है. श्रीमदाचार्यचरणने प्रभुकी सोनेकी कटोरी गिरवी रखके जब भोग अरोगायो तब आपने वा द्रव्यसूं समर्पित सारोको सारो प्रसाद गायनकुं खवा दियो. ये है साम्प्रदायिक सिद्धान्त. या प्रकारके आदर्शरूप सिद्धान्तनूको जा (सार्वजनिक मन्दिर-हवेलीकी) प्रथासूं विनाश होवे, आचार्यनकुं देवलक बनायो जाय, वा प्रथाकुं जितनी शीघ्र सम्प्रदायसूं हटा दी जाय, उतनो ही श्रेय यामें गोस्वामिसमाज तथा वैष्णवसमाज को निहित है.

(१७/ख) भगवत्सेवा सम्प्रदायकी आत्मरूप प्रवृत्ति है. आचार सेवाको अंग है, सेवाके अनुकूल आचारको पालन कियो जानो चहिये. आचार-पालनकुं प्रमुखता देके भगवत्सेवाको त्याग भी उचित नहीं है. भगवत्सेवा जैसे भी बने (अपने घरमें) करो...गुरुघरनूमें मत भेजो...यदि हम भगवद्द्रव्यकुं पेटमें डालेंगे तो वो अपराध है. ग्रन्थनूके अध्ययनके प्रति हमकुं समाजकुं आकृष्ट करनो चहिये.

(**नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी महाराज, मुंबई-किशनगढ़** (१७/क)''आचार्योच्छेदक ट्रस्ट प्रथासे पुजारीपनकी स्थापना घोर सिद्धान्तहानि एवं घोर स्वरूपच्युति'' लेख.पृष्ठ.७, १७/ख.लेख 'श्रीवल्लभविज्ञान अंक ५-६ वर्ष १९६५में प्रकाशित वक्तव्य)

(१८/क) वैष्णवनूके पास जो भी परम पदार्थ है वाको अस्तित्व आजके ही दिनको आभारी है. कालकी भीषणता और परिस्थितिकी विषमता के अत्यन्त विकट युगमें श्रीमत्प्रभुचरणनूके दिव्य सिद्धान्तनूके ऊपर अटल रहवेपर

ही जीवमात्रको ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो पावेगो. अन्याश्रयके त्यागकी भावनापे जगत्के जीव दृढ़ रहें तो वैष्णव-हवेलीनूके वैभवके कारण जो वैष्णव घरसेवाकुं भूल चुके हते, संयोगवशात् उन हवेलीनूमें श्रीके दर्शन आज बन्द भये हैं यासुं अब वैष्णवनूके घर पुनः भगवत्सेवासूं किलकिलाते हो जायेंगे. ये लाभ सम्प्रदाय और सम्प्रदायीन् केलिये मामूली नहीं रहेगो. ईश्वरेच्छा अनाकलनीय होवे है. मोकुं तो श्रद्धा है के या कठिन परीक्षामें हम सभीनूको श्रेय ही सिद्ध होवेवालो है.

(१८/ख) मेरे अनुयायीनूकुं दो प्रकारकी दीक्षा दउं हूं. प्रथम कंठी बांधनी तथा दूसरी ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा. कंठी-बांधनी साधारण वैष्णवनूकुं ही दी जावे हे तथा ब्रह्मसम्बन्ध विशेषरूपसूं उन अनुयायीनूकुं, जो सेवामें विशेषरूपसूं आगे बढ़नो चाहे हें. पहली दीक्षाकुं 'शरण-दीक्षा कहें हैं तथा दूसरी दीक्षाकुं 'आत्मनिवेदन कहें हैं. शरणदीक्षासूं वैष्णव सिर्फ नामस्मरण करवेको ही अधिकारी बने है तो सेवावाले वैष्णवकुं ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा लेवेके बाद ही अधिकार मिले हे. ब्रह्मसम्बन्ध लेवे वालो वैष्णव अपने घरमें ही सेवाको अधिकारी होवे हे... हम स्वरूपकी सेवा नन्दालयकी भावनासूं करें हें. यालिये हम सातोंके सात पुत्रनूके घर 'घर' ही कहलावे हैं ओर हमारे घरकी सृष्टि 'तीसरे-घरकी-सृष्टि' कहलावे है.

(१८/ग) श्रीआचार्यचरणके सिद्धान्तोमें भगवत्सम्बन्ध और भगवत्सेवा को ही प्रधानता दी गयी थी. बादमें, परिलक्षित होता है कि, उसमें भी कुछ अन्तर आ गया.... श्रीआचार्यचरणके और श्रीप्रभुचरणके, सेवक हम देख सकते हैं कि सभी प्रकारके हैं. ऐसा नहीं है कि अमुक विशिष्ट व्यक्ति ही भगवत्सेवाकेलिये योग्य होता है और अमुक परिस्थितिमें ही भगवत्सेवा हो सकती हो ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है. अनेक प्रकारके जीव भगवत्सेवा करते थे. उनमें स्मशानवासी वेश्या आदिसे लेकर अच्छे विद्वान् ब्राह्मण भी थे आजके समयमें मुझे प्रतीत होता है कि हम उन चरित्रोंको भूल कर पीछेसे मुख्य बन गये ऐसे केवल भावात्मक रूपको ले कर बैठ गये हैं कि जो आज भी वैष्णवोंमें प्रचलित है.... मैं मानता हूं कि चरित्रोंका विचार करनेमें सिद्धान्तोंकी आवश्यकता होती है.

(**तृतीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज, कांकरोली** (क) श्रीमत्प्रभुचरण प्राकट्योत्सव=ता.२४-१२-४८के दिन मुंबईके पुष्टिमार्गीय

वैष्णवनूकी सभामें अध्यक्षीय प्रवचन. (ख) बयान:मूर्तिबा कार्या.सहा.कमि. देवस्थानविभाग. खंड.उदयपुर एवं कोटा बजरिये कमिशन मु.कांकरोली.फाईल संख्या.१-४-६४. श्रीद्वारकाधीशमन्दिर दिनांक ७।११।६५. (ग) श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत २०मुं पृष्ठ.१४६,१४९).

(१९) आज मोकुं अपने हृदयके उद्गार कहवे दो, मेरो हृदय जल रह्यो हे मन्दिरनूमें मात्र द्रव्यसंग्रहकी प्रवृत्ति बच गई हे; ओर वोही अनर्थनूकी जड़ है. ऐसे मन्दिरनूके अस्तित्वसूं कोई लाभ नहीं है. हमारो सम्प्रदाय सामुहिक नहीं वैयक्तिक है. सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक अवश्य है परन्तु सार्वजनिक नहीं. "करत कृपा निज दैवी जीवनपर" या उक्तिमें 'निज शब्दको प्रयोग कियो गयो है. दैवीजीव कहीं भी हो सके हैं परन्तु सार्वजनिक रूपसूं नहीं. आज हम 'पुष्टि'को नाम लेवेके भी अधिकारी नहीं हैं!... आजको हमारो जीवन चार्वाक-जीवन हो रह्यो हे. क्या हम आज जा प्रकारको सम्प्रदाय हे वाकुं जिवानो चाहें हैं? यदि सच्चे सम्प्रदायकुं चाहो हो तो स्वरूपसेवा घर-घरमें पधराओ एवं नामसेवापे भार रखो... भक्तिकी प्राप्ति स्वगृहमें सेवा करवेसूं ही होयगी. आजके इन मन्दिरनूसूं कोई लाभ नहीं है क्योंकि इनमें द्रव्यसंग्रहकी प्रधानता आ गयी है; ओर जहां द्रव्य इकठ्ठो होय है वहीं अनर्थ हो जावे है. आज सम्प्रदायको विकृत स्वरूप याके कारण ही है.

(**नि.ली.गो.श्रीकृष्णजीवनजी महाराज, मुंबई-मद्रास** 'वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष.१९६५)

(२०/क) जैसे स्वरूपसेवा स्वार्थबुद्धिवश और लौकिक कार्य समझके नहीं करवेकी श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है, वैसे ही नामसेवा भी वृत्त्यर्थ नहीं करनी चहिये, ऐसी आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें करें हैं... वृत्त्यर्थ सेवा करवेसूं प्रत्यवाय (दोष) लगे है. जैसे गंगा-जमुना जलको उपयोग गुदाप्रक्षालनार्थ नहीं कियो जा सके है, वैसे ही सेवाको उपयोग भी वृत्त्यर्थ नहीं करनो चहिये.

(२०/ख) तन और वित्त प्रभुकेलिये वापर्यो जाय तो मन भी प्रभुमें अवश्य लगे ही है अतएव श्रीवल्लभने उपदेश कियो है के "तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा". मानसी जो परा है वो सिद्ध करनी होय तो तनुवित्तजा सेवा आवश्यक है. तन और वित्त कहीं एकत्र लगायो जाय तो चित्त भी वहां दिन-रात लग्यो रह सके है. दलालीको व्यवसाय करवेवालेके व्यवसायमें केवल तनसूं श्रम कियो जावे है. परन्तु वामें वित्त स्वयंको लगायो नहीं जावे है अतएव बजारके भावनूकी घट-बढ़में दलालकुं तनिक भी मानसिक चिन्ता होवे नहीं है... कोई बच्चाको पिता केवल ट्युशन फी देके समझ ले है के बच्चा परीक्षामें पास हो ही जायेगो. इन तीनोंकुं फलप्राप्ति होवे नहीं है क्योंकि तनुजा-वित्तजा दोनों नहीं लगी. अब तनुवित्त दोनों लगावेवालेके चित्तप्रवण होवेको उदाहरण देखें: एक दुकनदार दुकान और माल की खरीदीमें पूंजी लगाके व्यापार शुरु करे सुबहसूं रात तक वहां उपस्थित रहके जब तन भी व्यापारमें लगावे है तो या कारणसूं दिनरात वाकुं व्यापारके ही विचार आते रहे हैं : अच्छी तरह व्यापार कैसे करूं कैसे व्यापार बढ़े... अतः पुष्टिमार्गमें प्रभुमें आसक्ति सिद्ध होवेकेलिये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया समझायी गयी है कि भावपूर्वक भक्तकुं तनुवित्तद्वारा सेवा करनी चहिये.

(**नि.ली.गो. श्रीगोविन्दरायजी महाराज पोरबन्दर :** (२०/क) 'सुधाधारा पृ.११४. (२०/ख) 'सुधाबिन्दु पृ.७३)

(२१) "अति धन्यवादार्ह हे कि आपने इतनी महेनत करके सम्प्रदायके सिद्धान्तनूकूं कोर्टमें समझाये"-"हमारो यामें पूरो सहयोग रहेगो तनमनधनसे...हमारे सभी चि.बालक या कार्यमें सहयोग करवेकुं तैयार हें".

(**नि.ली.गो.-श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज,** जामनगर, : गो.श्याम मनोहरजी(-पार्ला-किशनगढ़ कुं भेजे दि.२६-१०-८६ और ७-११-८६ के पत्रनूमें).

(२२/क) ट्रस्ट हवेली-मन्दिर यानि पुष्टिभावोंकी मौत :

भगवान्-स्वधर्म पूंजीसे बंधकर नहीं चलते; वे श्रद्धा और प्रेमपरवश होकर चलते हैं. आज जो (मन्दिरों-हवेलियोंके) ट्रस्टोंकी या न्यांसोकी प्रणाली चल रही है वह पूजीवादकी एक अभिनव दास्तां है जिसमें भगवान्, गाय, गुरु और धर्मानुयायिओं पर एकछत्र साम्राज्य करनेकी लालच समायी हुई है. इस तरहसे आदर्शका जामा पहने हुए इस धनलिप्सा और धनिकों की दास्तांमें वह प्रेम नहीं है जो एक अकिंचन भक्तके "रहिये मेरे ही महल अनत न जैये..." इस आत्मीयता भरे मीठे बैंनोंमें झलकती

है. यह प्रेमभरा अनुनय है और आजका ट्रस्टी और सत्ता भगवान्‌को पूंजी या सत्ता के जोर पर यह कहते हैं कि "इस स्थानसे जरासा भी नहीं हिलना, ध्यान रखना, मैं तुम्हारा व्यवस्थापक, ट्रस्टी हूं, चाहो या न चाहो, तुमको मुझपर भरोसा करना ही होगा, समझे!" लोग समझते हैं कि यह धर्मरक्षाका ही एक सर्वश्रेष्ठ रूप है, किन्तु... इसमें भी प्राणोंकी उतनीही असुरक्षा है जो मौतसे कम नहीं...वल्लभाचार्यने ऐसे जकड़े हुवे ईश्वरको दामोदर माननेसे भी इंकार कर दिया.

ठाकुरजीको ट्रस्टमें पधरानेवालोंने ठाकुरजीको बेच दिया है :

...अच्छी तरह सोचो कि ऐसी कौन माता होगी जो अपने लड़केको धनकी लालचमें बेच दे; या कोई प्रेमी कभी भी प्रत्यक्ष तो क्या सपनेमें भी ऐसा करना तो दूर रहा, सोच या देख भी नहीं सकता, इस विषयमें एक कहानी याद आती है...एक बार रुपये पैसेवाली बांझ औरत (आधुनीक दर्शनीया वैष्णव और ट्रस्टी) ने एक गरीब (गोस्वामी गुरु) का बच्चा (ठाकुरजी) खिलानेके लिये लिया. कुछ दिनों बाद बच्चेकी मांने जो गरीब थी बच्चा मांगा तो अमीर औरतने कहा कि ये तो मेरा ही बच्चा है, तेरा नहीं है. जो तुझसे हो सके वह करले. बैचारी गरीब मां...न्यायकी मांग करने लगी...मगर सभी (वैष्णव,आमजनता,सरकार) लोग उस गरीबके खिलाफ गवाही देने चले आये.

इस तरह धनने ईमान खरीदा, भगवान् खरीदा और उस उन्मुक्त बालककी गुंजती किलकारियां हमेंश-हमेंश के लिये चुप हो गई. लोगोंने कहा कि अब भगवान् बोलते नहीं, हंसते नहीं, खेलते नहीं हैं. किन्तु यह आशा उससे की जा सकती है जो जीवित हो, किसीके प्यारमें बन्धा हो. फिर उस खूबसूरत बच्चेकी नुमाईश और प्रदर्शन करने लगा, जैसे बेबी मिल्कके डिब्बेका चित्र या मोडेलका चित्र होता है.

ट्रस्टीओं द्वारा की जाती सेवा पूतनाके प्रेमके समान है :

रोज यह सोचा जाने लगा कि इससे क्या आमद हुई, कितनी बिक्री हुई. और सभी व्यवस्थापक इसकी निगरानी करने लगे. जब कोई आता देखने तो उसे दुलार किया जाता. लोग समझते हैं कि यह प्यार है, भक्ति है. मगर था तो वह व्यवसाय ही, जिसका रूप पूतनाके प्रेमकी भांति सच्चाईको छिपा गया और भोली यशोदाने लाल उसे खिलाने

दे दिया.

मन्दिर-हवेलियां दुकान बन चुके हैं :

कितनी बिक्री हुई इसका हिसाब रखा जाने लगा धर्म और धर्मस्वरूप यह बालक भगवान् जो प्यारसे भक्तोंके लिये भोला बन गया था. लोगोंने उससे फायदा उठाया और कह दिया - यह सार्वजनिक ईश्वर है. उस सर्वशक्तिमानको स्वार्थका साधन बना दिया और जगन्नियन्तापर धननियन्ता शासन करने लगे. हालत यह हुई कि कौन उसको खिलाये-पिलाये? वह तो सार्वजनिक था!

मन्दिर-हवेलियोंके ठाकुरजी जड़ बन चुके हैं :

द्वारकाधीशको भी यह छूट थी कि वह विदूरके घर साग खा सकता था किन्तु यह तो नितान्त निष्क्रिय बन गया, केवल दिखावा मात्र!

...क्या यह सिद्धान्त किसी प्रियतमके लिये प्रियतमा या माता को मान्य होगा? किन्तु यह आज मान्य है और मान्य करना होगा. केवल पैसेकेलिये अपना दिल नहीं, दुनियाका दिल बहेलानेको, वारांगनाकी भांति, जिसमें हृदय नामकी कोई वस्तु रह नहीं सकती और है तो बह मानी नहीं जाती. सभीका अधिकार है उसपर, जैसे वह सम्पत्ति हो, जो चाहें खरीदें, जो चाहे प्रयोगमें लायें, जैसा चाहे वैसा करे! उसको करना ही होगा. कैसी अनोखी है यह भक्ति और प्रेम की परिभाषा! फिर भी स्वतन्त्रताका घोष किया जाता है! क्या यह ही वह भक्ति है जिसे श्रीवल्लभ "महात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह" कहते हैं? आज इस भक्तिका माहात्म्य ये ही है कि किस भगवान्‌के यहां कितनी आमद होती है!

ट्रस्ट मन्दिर पुष्टिप्रभुके लिये जेलखाना :

...अब कोई प्यारसे यह नहीं कह सकता कि मेरा बालक देरसे सोया है, जल्दी मत जगाना. सूरदासका पद भगवान्‌को जगानेकेलिये दुलार नहीं रहा, न कलेउके पदमें ममताका अनुनय है; यह तो कम्पलसरी ब्रेकफास्ट है जिसे समय पर कैदीकी तरह ईश्वरको करना पड़ता है. मानो एक जेलखानेमें उठने या खाने की घंटी बजी हो! ठाकुरजी बिक रहे हैं; मनोरथी-दर्शनार्थी भक्त नहीं ग्राहक हैं.

...श्रीवल्लभाचार्यने जीवनमें अपने कलेजेके टुकडे अपने आराध्यको कभी दूर नहीं होने दिया. आज वो बिक रहा है धनिकोंके हाथों और

जकड़ा है सरकारी शिकंजेमें, पब्लिक् पोलिसीके अंदर, और अब उसे म्युझियमकी शोभा बनानेका समय निकट आ रहा है.

धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है :

बेचारे धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है...भगवान्की सुंदर विनिन्दितमुक्ता-दंतपंक्ति बगला भगतोंको देखकर खिल जाती है. सदानन्द निरानन्द होकर इन ईमान खरीदनेवालोंके हाथों खुल्लेआम बेचा जा रहा है...सबको सहारा देनेवाला स्वयं बेसहारा होकर बैठा है अपने धनिक ग्राहकोंकी प्रतीक्षामें!

हवेली-मन्दिरमें देवद्रव्यका प्रसाद खाना मतलब नरककी टिकिट कटवाना :

धर्मशास्त्रमें जिस बुद्धिमान् ब्राह्मणको देवलकवृत्तिसे अधम माना गया है...आज उस देवलकवृत्तिका धन चटकारे लेकर वैष्णवसमाज खा रहा है. नाथद्वारेमें क्या चिज स्वादिष्ट है...ये ही विवेचन करता है...किन्तु मेरा कर्तव्य क्या है यह कभी नहीं सोचता. श्रीनाथजीमें अब धनिकोंका साम्राज्य है.

...नाथद्वारामें आजकल पैसा अधिक आ रहा है, क्योंकि वहां इन धनिकोंका साम्राज्य है. इनके दलाल श्रीनाथजीकी महिमा बढ़ाते हैं...गरीबोंकेलिये ठहरनेवाला भगवान् अब धनिकोंकेलिये ठहरता है.

श्रीवल्लभके आदर्शोंके स्मशान जैसें मन्दिर-हवेलियां :

भगवन्नाम भागवतसे अस्पतालोंकेलिये करोड़ोंकी रकम जमा होती है, और जामनगरमें आदर्श स्मशान भी है, किन्तु यहां तो स्मशानसे भी आदर्श गायब होता जा रहा है! शायद आदर्शका स्मशान है यह ट्रस्ट और सरकारी देवालय.

मन्दिरका प्रसाद खाया नहीं जा सकता है :

...वल्लभमतमें ये सिद्धान्तत गलत है ओर ऐसे देवस्थानोंका चढावेका प्रसाद भी नहीं खाया जा सकता. क्योंकि वहां देवलकवृत्ति ही प्रधान है.

दर्शन-मन्दिर धर्मप्रचारका माध्यम नहीं हो सकते :

जहां तक भगवत्स्वरूप या मूर्तिका प्रश्न है, धर्मप्रचार उनसे सम्बन्धित नहीं है और न उसे उचित कहा जा सकता है. क्योंकि भगवान्ने धर्मकी व्यवस्थाकेलिये वेदव्यासादि अनेक ज्ञानावतार और अंशावतार धारण करके

ही धर्मरक्षा की है. आजकी (सार्वजनीक हवेली-मन्दिरकी) व्यवस्था आचार्योचित और धार्मिक या भारतीय ही नहीं है तब वल्लभाचार्यसम्मत होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता...हमारा इस विषयमें सुझाव है कि एक अलग व्यवस्था...करनी चाहिये जिससे वल्लभसिद्धान्तोंकी रक्षा हो सके. यदि ऐसी व्यवस्था नहीं कि जाती तो देवद्रव्य होता है. जिसका सेवन करनेसे आचार्य स्पष्ट कहते हैं कि नरकपात होगा.

नकली बैठके :

बैठकोंकी भावगंगा तो अब घरबैठे ही मनुष्यको पवित्र करने अपनी उत्ताल तरंगोसे सारे घर-बारको ही सराबोर करने लगी है!...८४ बैठकोंसे काम नहीं चला तो अब महाप्रभु श्रीवल्लभको मुसलमानोंके खेतोंमें अपनी झारी और अन्य चिन्ह प्रकट करनेको विवश होना पड रहा है!

("हमारी धार्मिक स्थितिका वर्तमान स्वरूप एवं भविष्यकी व्यवस्थाहेतु प्रतिवेदन" दिनांक. २५।२।८१)

(ख) श्रीवल्लभाचार्यने सेवाको खरीदनेकी बात नहीं कही है कि खरीद आओ रूपये देकर. नहीं! 'तनुवित्तजा'पदका अर्थ ही यह है कि वह समस्त पद है. जहां तन लगे वहीं धन लगे तब ही सेवा हुई. परन्तु धन लगे और तन न लगे तो सेवा हुई नहीं कहलाती है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.५९)

(ग)..."सेवाऽपि कायिकी कार्या" यह नहीं कि पैसे दे दिये. पैसे देकर घरमें विवाहिता पत्नीको नहीं लाया जाता है, वैश्याको लाया जाता है. वेश्यासे घर नहीं बसता है यह स्पष्ट है. अतः साफ बात है कि भगवत्सेवा और वरण में पति-पत्नीका दृष्टान्त देते हैं कि जिनमें आत्मीय सम्बन्ध है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.७४)

(घ) भेंट भी आचार्यके सन्मुख ही होती है. प्रभुके सन्मुख भेंट नहीं होती है. देवलकवृत्तिसे बचनेकी विधि और वैदिक व्यवस्था को सम्हालकर रखना चाहिये अन्यथा बुद्धि बिगड़ेगी. ऐसा करनेसे पतन होता है, और हुवा है. (वहीं पृ.१७१)

वस्त्र-अलंकारोंमें मन अधिक जाता हो तो ऐसा साहित्य रखनेकी आवश्यकता नहीं है. ऐसा करनेसे लौकिक बठता है और धर्मभावना नष्ट

होती है...अतः वैभव बढ़ानेकी श्रीगुसांईजीने ना कही थी. और श्रीमहाप्रभुजीने नावको डुबोकर पुरुषोत्तमको ही घरमें पधराया था. (वहीं पृ.१८०)

(ङ) धर्म की परम्परा प्रदर्शनपर आधारित नहीं है पर एक यथार्थ जीवनका उज्वल पक्ष है...कुनवारा और अन्य मनोरथों...का रूप आगे चलकर महाप्रभु श्रीवल्लभकी आचार-परम्परा और सम्प्रदायकी मर्यादा को आहत करनेवाला होगा जिसकी आज कल्पना भी की नहीं जा सकती है. (वहीं पृ.१९७)

(नि.ली.गोस्वामी श्रीरणछोडाचार्यजी प्रथमेश.)

(२३/क) प्रश्न:'देवद्रव्य कायकुं कहे हैं? 'देवद्रव्य'को मतलब देवको द्रव्य. ऐसो द्रव्य या पदार्थ जो देवकुं ही उद्देश्य बनाके अर्पण कियो गयो होवे वाकुं 'देवद्रव्य कहे हैं. याही प्रकार गुरुकुं उद्देश्य बनाके अर्पण किये गये द्रव्यकुं 'गुरुद्रव्य' कह्यो जाय है....मन्दिरनूमें ठाकुरजीके सन्मुखमें भेंट धरे जाते द्रव्यकुं और ट्रस्टकी ऑफिसमें आते द्रव्यकुं तो स्पष्ट शब्दनूमें 'देवद्रव्य' कह्यो जा सके है; और वा द्रव्यसूं सिद्ध होती सामग्रीमें भगवत्प्रसादी होवेके बाद महाप्रसादपनो तो आवे है परन्तु वाके साथ वामें देवद्रव्यपनो भी रहे ही है. याही कारण वैष्णवनूंकुं ऐसे महाप्रसादकुं देवद्रव्य समझके ही व्यवहार करनो चहिये. ऐसे महाप्रसादकुं लेवेमें देवद्रव्यको बाध तो रहे ही है.

(२३/ख) मन्दिरके स्थलके फेरबदलके बारेमें श्री गो.पू.१०८ श्रीबालकृष्णलालजीने कह्यो कि पुष्टिमार्गमें सार्वजनिक मन्दिरकी परम्परा नहीं है यामें व्यक्तिगत स्वरूप निजी स्वरूप की ही बात है; और याही कारण पुष्टिमार्गमें सेवाप्रकार देवालयके प्रकार जैसो नहीं है. मन्दिरको निर्माण भी घर जैसो होवे है कहीं भी ध्वजा-शिखर नहीं होवे है वैष्णव भी घरमें ही सेवा करे है तथा वाकुं 'मन्दिर ही कहे है...

(नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी महोदय, सुरत, (क)'वैष्णववाणी अंक.३, वर्ष मार्च १९८३.(ख)'गुजरात समाचार अंक २५-५-९३में प्रकाशित)

(२४) पुष्टिमार्गकी आज उपेक्षा होती जा रही है. उसकी परम्परा ही अब टूटती जा रही है. इसके मूलमें यदि कुछ है तो वह है आजकी साधन-सम्पत्ति. वही हमारे संस्कार बिगाड़ रही है. अभी भी जिस घरमें

अलौकिक (प्रभु) सेवा होगी वहां पुष्टिमार्ग जरूर निभेगा. श्रीमदाचार्यचरणके मतानुसार गृहसेवा और अपने माथे बिराजते ठाकुरजीका अति स्नेहसे जतन करना ही सच्चे संस्कारका मूल है...श्रीगुसांईजीके समयमें छप्पनभोग जैसे मनोरथोंकी शुरुआत करनेके समय (उनमें) केवल लौकिकता ही बढ़ेगी ऐसी स्पष्ट सूचना दी गयी थी...आजकल...मंदिरोंका उपयोग यश-किर्ती प्राप्त करनेके लिये होने लगा है. मंदिरोमें प्राधान्य मनोरथीका होने लगा है. श्री(ठाकुरजी), गुरु तथा सेवाभावना का उपहास होने लगा है. जबसे मार्गीय सिद्धान्तोंका उपहास होने लगा है तबसे मंदिरकी उसके संचालकोंकी वृत्ति ही पलट गई है. आडंबर और यश को पुष्ट करनेकेलिये...दर-दर भटकनेकी स्थिति पैदा हो गयी है...इन सबका सच्चा उपाय इस कलिकालमें अपने सन्तानोंको जरूरी संस्कार अपने घरसे ही दिये जायें ये ही है.

...मंदिरोंका सम्पूर्ण व्यापारीकरण होने लगा है...सम्पत्ति...प्राप्त करनेकी लालच बढ़नेसे प्रभु(स्वरूपसेवा)को भी हम व्यापार स्वरूपमें परिवर्तित करने लगे हैं.

(जुलाई-२००७, पृ.६)

ठाकुरजीकी सेवा चोरकी तरह करनी चाहिये...सेव्यस्वरूपका मैं सेवक हूं उसका ढिंढ़ोरा पीटना या उसका प्रदर्शन करना वह भी जीवके दैन्यमें विक्षेप उत्पन्न कर सकता है....अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें भी इतनी गुप्तता जरूरी है. "प्रीत हियेंमें राखिये प्रकट करे रस जाय" की रीतिसे तुम्हारे प्राणप्रेष्ठ तुमको जिस रसकी प्राप्ति करातें हैं उसे कभी भी प्रकट नहीं किया जा सकता है.

(सप्टेंम्बर-२००४, पृ.७)

आजतो श्रीनाथजी-नाथद्वारा, चंदबावा-कामवन और अन्य ठाकुरजीके दर्शन करते ही अपने माथे बिराजते ठाकुरजी भुला जाते हैं. पुष्टिमार्गमें तो 'श्रीजी'का अर्थ ही अपनें माथे बिराजते ठाकुरजी होता है. जिसमें 'तिरु'का अर्थ श्री और 'पति'का अर्थ नाथ (यानि श्रीनाथ) ही होता है. अर्थात् अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीमें ही अपने सर्वस्वका दर्शन होना चहिये. उनको आरोगाया मतलब समस्त जगतको प्रसाद लिवा दिया ऐसा भाव सिद्ध होना चाहिये. यहां तो उससे उलटी गंगा बह रही है. अपने सेव्य ठाकुरजीमें सभी निधिस्वरूपोंके दर्शन होनेके बदले अब तो अरे,

वहां तक कि जीवमात्रमें अपन अपने ठाकुरजीका दर्शन करनेका विचार कर रहे हैं! और फिर बुद्धिकी चतुराई भी वापर रहे हैं कि सभीमें ठाकुरजीका अंश है इसलिये घरमें प्रभुकी सेवा करें या अन्योंकी करें एक ही बात है!! अतः अन्यसेवामेंसे सन्तोष लेना शुरु किया. इससे शरीर, पैसा, कीर्ति सबकी रक्षा हो और ऊपरसे परम भगवदीय कहलाने लगें!!! (सप्टेम्बर-२००७, पृ.७)

(**पंचमगृहाधीश.नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज,** कामवन-विद्यानगर, वैष्णवता-'सांचे बोल तिहारे', प्रकाशक: पं.पी.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज)

(२५/क) हम श्रीवल्लभाचार्यजीकी आज्ञाको पालन कहां कर रहे हैं? अपने यहां गृहसेवा कहां (रह गयी) है? केवल मन्दिरनूमें दर्शनसूं क्या लाभ है? श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है "कृष्णसेवा सदा कार्या" . यदि श्रीमहाप्रभुजी मन्दिरकुं मुख्य मानते तो अपनी तीन परिक्रमानूमें अनेक मन्दिर स्थापित कर देते. श्रीगुसांईजीने श्रीगिरधरजीकुं सातस्वरूपके मनोरथ करते समय या प्रकारकी चेतावनी दी थी. मन्दिरस्थापन करते समय उनकुं डर हतो के घरमेंसूं ठाकुरजी मन्दिरमें पधार जायेंगे. मेरे पिताजीने कल (उपर्युद्धृत वचनमें) जो कह्यो वो अक्षरशः सत्य है तुम अपने घरनूमें ठाकुरजीकुं पधराओ और सेवा करो.

(२५/ख) पुष्टिमार्गीय प्रणालिकाके अनुसार ट्रस्ट होनो उचित नहीं है. श्रीआचार्यचरणने प्रत्येक ब्रह्मसम्बन्धी जीवकुं आज्ञा दी है "गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः" (भक्तिवर्धिनी) अर्थात् गृहमें रहके स्वधर्माचरण करनो चहिये गोस्वामी बालक भी आचार्य होवेके बावजूद वैष्णव भी हैं. अतः आचार्यश्रीकी उपरोक्त आज्ञाकुं पालनो उनको भी कर्तव्य है... अतः मेरो तो माननो यही है के आचार्यचरणके सिद्धान्तके अनुसार वैष्णवनूकुं स्वयंके घरमें श्रीठाकुरजीकी सेवा करनी चहिये और धर्मग्रन्थनूको पठन-पाठन करनो चहिये. नहीं के मन्दिरनूमें जाके... ट्रस्ट तो पुष्टिमार्गीय प्रणालिकासूं संगत होवेवाली बात नहीं है प्रत्युत अपनी प्रणालीको भंग करवेवाली बात है.

(**नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीशजी महाराज दहिसर-मुबई,** क-'वल्लभविज्ञान'. अंक ५-६ वर्ष १९६५, ख-'नवप्रकाश अंक ८ वर्ष ८)

(२६) क्योंकि श्रीनाथजी स्वयं वाके भोक्ता हैं किन्तु वैष्णव-वृन्द तथा सेवकगण भी वा महाप्रसाद लेवे तकके अधिकारी नहीं हैं. यह आचार्यचरणके इतिहाससूं प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है वाके महाप्रसाद लेवेको केवल गायकुं ही अधिकार है. अन्यथा वा देवद्रव्यके उपभोग करवेसूं निश्चय ही अधःपतन है... सब प्रकारके दान-चढ़ावा व वसूल वसूली करवेको उल्लेख कियो गयो है, वो भी सम्प्रदायके सिद्धान्तसूं नितान्त विरुद्ध है अपने सम्प्रदायकी प्रणालीके अनुसार जो अपने सम्प्रदायके सेवक हैं, उनकोही द्रव्य गुरु-शिष्यके सम्बन्धसूं लेके सेवामें उपयोग करायो जा सके है. सम्प्रदायमें सब प्रकारके दान-चढ़ावानूको उपयोग सेवामें नहीं कियो जाय है; ओर कदाचित् कहीं कियो जातो होय तो वो सम्प्रदायके नियमनूसूं विरुद्ध होवेके कारण बन्द कर देनो चहिये.

(**सप्तमगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीघनश्यामलालजी, कामवन** "श्रीनाथद्वारा ठिकानेके प्रबन्धकी दिल्ली-योजनाकी आलोचना ता.१-२-५६")

(२७/क)...ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा करवेसूं प्रत्येक इन्द्रियनूको भगवानूमें विनियोग होवे है... मन्दिर-गुरुघर केवल उपदेशग्रहण करवेकेलिये हैं सेवा अपनकुं अपने घरनूमें करनी है.

('वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष १९६५)

(ख) आज बहुत घरोंमें सेवा होती है, पर क्या हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि यह सेवा वास्तविक सेवा है? क्या आजकी सेवा "चेतस्तत्प्रवणं सेवा" (चित्तका प्रभुमें प्रवण हो जाना वह सेवा है) का अक्षरशः सार्थक स्वरूप है?

वस्तुतः हम खुद वल्लभवंशज गोस्वामी भी यह दावा नहीं कर सकते हैं कि आज हम वास्तविक सेवा कर रहे हैं. यह कहनेमें मुझको लेशमात्र भी संकोच नहीं हो रहा है, क्योंकि मैं दम्भका संरक्षण करना नहीं चाहता हूं, अतः स्पष्ट है कि यदि हम गोस्वामीओंमें सेवाकी और श्रीमहाप्रभुजीद्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तोंके पूर्ण परिपालनकी क्षमता होगी तो ही हमारे अनुयायी स्वयं सेवा और सिद्धान्त के परिपालनमें सक्षम हो पायेंगें, अन्यथा नहीं. क्योंकि हम गोस्वामी और वैष्णव एक ही तत्त्वके दो प्रकार हैं. वल्लभकुल बिन्दुसृष्टि है तो वैष्णव नादसृष्टि है. इस स्थितिमें श्रीमहाप्रभुजी

और श्रीगुसांईजी प्रभुचरण द्वारा की गयी आज्ञा वल्लभकुल और वैष्णव दोनोंकेलिये परिपालनीय है.

(**पू.पा.गो.श्रीमथुरेश्वरजी महाराज, बडौदा-सुरत, पुष्टिबोध भाग.१-२,वि.सं.२०३४**)

(२८/क) प्रश्न : आज चल रहे जो डिस्प्युट हैं वामें कितनेक सिद्धान्त चर्चित हो रहे हैं जैसे कि नये मन्दिर नहीं खोलने, ट्रस्ट-मन्दिर नहीं बनाने, ठाकुरजीके नामपे द्रव्य नहीं लेनो, ठाकुरजीके दर्शन नहीं कराने तथा बिना समजे-सोचे कोईकु ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो, इन सब विषयमें आपको अभिमत क्या है?

उत्तर : देखो मन्दिरकी जहां तक स्थिति है तो ये बात सत्य है के पुष्टिमार्गीय प्रकारसुं मन्दिर तो मात्र एक ही है; ओर सब घरकी स्थिति हती ...आज मन्दिर जितने हैं अथवा जिन स्थाननकुं अपन मन्दिर समझे हैं वो स्थान... वाकु अपन मर्यादापुष्टि मन्दिर कह सके हैं पुष्टिमन्दिर नहीं पुष्टिको प्रकार तो मात्र गृहसेवामें ही है.

('आचार्यश्रीवल्लभ', ऑगस्ट१९९४,अंक.५, पुष्टिमार्ग-वर्तमान.प्रश्न-उत्तर.४,पृ.७)

(ख) आजसे डेढ़सो वर्ष पूर्व, श्रीमहाप्रभुके समयसे तब तक, पुष्टिमार्गमें भगवन्मन्दिर खोलनेकी प्रणाली नहीं थी. प्रत्येक वैष्णवके घर-घर भगवत्सेवा हो उसका आग्रह रखा जाता था. वैष्णव अपने घरमें श्रीठाकुरजीके स्वरूपको सेव्य कराकर पधराकर गुरुघरकी प्रणालिका अनुसार सेवा करते थे. (व्रज मोंहे बिसरत नांही, पृ.१४०-१४१)

(ग) खेतमें भरे हुवे जलको पी नहीं सकते... वो अनाज तो पैदा कर सकता है. वो अपने पेट भरनेका साधन मात्र करता है. वो किसी दूसरेके ओर उपकारका नहीं होता है... अपना पेट पालनेकेलिये भगवद्गुणगान करते हैं वो उस प्रकारके होते हैं कि जैसे खेतमें भरा हुवा पानी होता है. पद्मनाभदासजी... आचार्यचरणके निबन्धका श्लोक समझाने पर ही उन्होंने अपनी पौराणिक वृत्तिको छोड़ दिया!... अपने मकानमें बरतन धोनेके पनाले हैं उसमें जो जल जाता है वो एक गढ्ढेमें इकट्ठा हो जाता है... वो पानी तो केवल गंध ही मारता है... भगवद्भाव होते हुवे भी जिनके

स्वभावमें दुःसंगके द्वारा दोष उत्पन्न हो जाता है ऐसे मनुष्य उस गंदे गढ्ढेके समान बन जाते हैं कि जिसमें पानी भरा हुवा तो होता है लेकिन वो पानी किसी उपयोगका नहीं होता. वो भरा हुवा पानी केवल दुर्गन्ध पैदा करता है... पांचवे (भगवद्गुणगान करके अपनी आजीविका चलानेवाले नीच वक्ताओंके भाव) गटरके समान दुर्गन्धयुक्त...अस्पृश्य होते है. (जलभेद प्रवचन, वड़ोदरा)

(**तृतीयगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज,** कांकरोली-वड़ोदरा)

(२९) श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के दुनियामें भटकते रहेते अपने मन-चित्त(कुं) श्रीठाकुरजीके सङ्ग जोडिके बिनकी तनु-वित्तजा सेवा करनी. तनुवित्तकी सेवा अर्थात् स्वयं उपार्जित अपने धनसों अपने ही घरमें श्रीठाकुरजीकी अपने ही शरीरसों सेवा करनी सो.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीवागीशकुमारजी, वडोदरा-कांकरोली** 'वल्लभीयचेतना', ऑक्टोबर१५ २००३,पृ.४)

(३०) जो घरमें रहकर प्रभुकी सेवा करते हैं वे स्वयं तो कृतार्थ होते ही हैं किन्तु उनके परिवारके परिजन भी कृतार्थ होते हैं. ... सभी इन्द्रियसे अन्तःकरणसे भजनानन्दका अनुभव घरमें रहकर श्रीठाकुरजीकी सेवासे होता है. ... इसलिये घरमें आचार्य श्रीगुरुचरणसे पुष्ट करके श्रीठाकुरजी पधराओ और समयको सेवामय बनाओ. ... श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं तो घर घर नहीं रह जाता, वह प्रभुकी क्रीडाका स्थल बन जाता है... नन्दालयकी लीलाका स्थल बन जाता है.

...मुकुन्ददास...रामदास सांचोरा...किशोरीबाई...जीवनदास...इन महानुभावोंने...श्रीनाथजी तथा घरके श्रीठाकुरजीमें भेद नहीं समझा.

...श्रीठाकुरजी अपने निधि अर्थात् सर्वस्व हैं. ... ऐसे पूर्णपुरुषोत्तम श्रीनन्दराजकुमारको श्रीमहाप्रभुजीने हमारी गोदमें पधराकर हमें भाग्यशाली बनाया है. यह अलौकिक निधि (धन) देकर हमें धन्य बनाया है. इससे बड़ा दूसरा कौनसा फल हैं!

...जो सांसारिक कामनासे श्रीठाकुरजीका भजन अर्थात् दर्शन स्मरण सेवा करता है उसे क्लेश ही हाथ लगता है. ... इसी तरह जो अपने

माथे श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं उन्हें हम चाहे जैसे नये-नये पुष्टिमार्गीय मनोरथ करके सामग्री सिद्ध करके लाड़ लड़ा सकते हैं परन्तु यह अधिकार किसी दूसरे ठिकाने थोड़ी मिल सकता है. अतः "घरके ठाकुरके सुत जायो नन्ददास तहां सब सुख पायो".

श्रीनाथजीको भी देवालयकी लीला छोड़कर नन्दालयकी लीला करने हेतु श्रीगुसांईजीके घर पधारना पड़ा. "व्याजं लौकिकमाश्रित्य श्रीविट्ठलेशगृहे अगमत्". अतः श्रीनाथजीका यह पाटोत्सव ही मुख्य माना गया है जो फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको आता है.

अतः घरके ठाकुरजीका स्वरूप समझना बहुत आवश्यक है. कोई पत्नी अपने पतिकी सेवा न करे, उसके गुणगान ही करती रहे... तो क्या पति सन्तुष्ट होगा? इसी प्रकार... जो सेवा न करे, कृष्ण-कृष्ण गुणगान करते रहते हैं, परन्तु सेवा स्वधर्मसे विमुख रहते हैं वे हरिके द्वेषी हैं (विष्णुपुराण) सेवासे सेव्यको सन्तोष मिलता है यही वैष्णवका स्वधर्म है.

(**पू.पा.गो.श्रीगोकुलोत्सवजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा,** २५२ वैष्णव वार्ता, खंड-२ की भूमिका पृ.१५-३६)

(३१/क) गो.श्रीहरिरायजी : जरा ध्यानसे सुनें... "तत्र अयम् अर्थः लाभपूजार्थयत्नस्य उपधर्मत्व-देवलकत्वादि" स्पष्ट सुनें, "सम्पादकत्वात्"... लाभ-पूजार्थ यत्न करता है जो सेवा करके, जब वो लाभ-पूजार्थ प्रयत्न करता है तो वो उपधर्म हुवा; देवलकत्व आदि जो दोष हैं वो उसमें प्रविष्ट होंगे ...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : अर्थात् यह खास ध्यानमें रखना कि जिस स्वरूपकी भावप्रतिष्ठा की गयी हो उस स्वरूपकी भी लाभ अथवा पूजा केलिये यदि सेवा की जाती है तो सेवा करनावाला देवलक(पापी बन रहा है...

गो.श्रीहरिरायजी : और उपधर्मत्व होता है... और ये निषिद्ध है...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : इस स्थितिमें गुरु अपने लाभ अथवा पूजा केलिये शिष्यसे कुछ भी ठाकुरजीकेलिये मांगता है तो वह... शास्त्रनिषिद्ध होनेसे... दान होनेसे देवद्रव्य होनेसे उपयोग करने योग्य नहीं होता है.

गो.श्रीहरिरायजी : हां बिलकुल... ये तो बिलकुल स्पष्ट है... 'स्ववृत्तिवाद'से भी स्पष्ट होता है.

('पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा विस्तृत विवरण पृष्ठ १६४,१९३)

(ख) श्रीमदाचार्यचरणने "तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा" यह कहा है. कारणके दो अलग अलग व्यक्ति तनुजा वित्तजा करते हैं तो मानसी सिद्ध नहीं होती... इसी अभिप्रायको समझानेकेलिये आचार्यचरणने 'तनुवित्तजा' यह समस्तपद कहा है...वेतनके रूपमें वित्त लेकर या देकर दो पुरुषों द्वारा की गई ऐसी तनुता-वित्तजा सेवाएं मानसीकी साधक नहीं होती यही अभिप्राय बतानेकेलिये तनुवित्तजा समस्तपद कहा गया है. अन्यथा तनुवित्तजा न कह कर तनुजा वित्तजा ही कहते... यदि दो अलग-अलग व्यक्ति तनुजा और वित्तजा करें तो दोनों सेवाओंकी एक संयुक्त अवस्था तनुवित्तजा नहीं बन पाती. अतएव मानसी सिद्ध नहीं होती.

(ग) जहां तक लाभपूजार्थत्वका सवाल है तो वह तो किसी भी कोटिका भक्त करेगा तो देवलक ही होगा...यदि कोई स्वलाभपूजार्थ दर्शन-मनोरथ-महाप्रसाद आदि करता है तो अवश्य देवलक है...**अन्यके घरमें, अन्यके वित्तसे, अन्यके ठाकुरजीके भोगका महाप्रसाद लेना घोर सिद्धान्तविरुद्ध है.**

(घ) अब रहा सबाल ट्रस्टकी इन्कम और प्रोफिट यानी आय और लाभ का, तो ट्रस्टके आय-लाभ हम नहीं लेते. उलटा भगवत्शास्त्रोक्त सर्वलाभोपहरण न्यायसे ट्रस्टका सारा लाभ भगवदर्थ या गो-ब्राह्मणार्थ लगा देते हैं. ... हमारें प्रभुको नित्यनेगभोग हम स्ववित्तजासे अरोगाते हैं.

(ङ) पुष्टिमार्गीय वैष्णवके लिये श्रीभागवतकथा करके वृत्ति करना निषिद्ध है.

(**पु.सि.सं.शि.पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी महाराज, जामनगर,** अनिर्दिष्टपृष्ठसं-ख्याक 'तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा')

(३२) अपने सम्प्रदायमें इतनो अधिक सिद्धान्तवैपरीत्य हो गयो है कि गुजरातके एक गांवमें...अपने सम्प्रदायके ही दो मन्दिर हैं और मन्दिरनकी दीवार भी एक ही है; परन्तु...इतनो लोकार्थित्व समाजमें उत्पन्न हो गया है...सवेरो होते ही चन्द्रमाजीवाले वैष्णव बालकृष्णलालको जो मेवा होवे है वो चन्द्रमाजीमें ले जावे हैं और बालकृष्णजीवाले जो वैष्णव होवे हैं वो चन्द्रमाजीको जो मेवा और प्रसाद होवे है वाकु बालकृष्णलालजीमें ले आवे हैं! ऐसी जबरदस्त होंसातोंसी वैष्णवसमाजमें पैदा हो गई है के मानों एक-दूसरेके संग स्पर्धा करते होवें. ऐसो ईर्ष्या-द्वेषको वातावरण

जब सेवाके क्षेत्रमें उत्पन्न हो जावे तो वासूं बढ़के लोकार्थित्व ओर क्या हो सके है!... ऐसे सभी सिद्धान्तवैपरीत्यकी फज़ीहत यदि सर्वाधिक कहीं होती होय तो गुजरातमें होवे है. भागवतमें भी लिख्यो है के "गुर्जरे जीर्णतां गताः" भक्ति गुजरातमें आके बूढ़ी हो गई है. अन्धानुकरण बढ़ा हो तो वह गुजरातमें बढ़ा है ... अतः सिद्धान्तकी सत्यनिष्ठा ... और श्रीमहाप्रभुजीके पुष्टिसिद्धान्तों के सद्जागरणकी कहीं आवश्यकता है तो ... गुजरातमें.

(**पू.पा.गो.श्रीद्रुमिलकुमारजी, सुरत** "पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा दि.१०-१३जनवरी,९२. पार्ले-मुंबई विस्तृतविवरण" पृ.३१७-३१८)

(३३) प्रश्न : अपने सम्प्रदायमें मन्दिरकुं 'मन्दिर न कहके 'हवेली क्यों कह्यो जावे है?

उत्तर : सामान्यतया इतर हिन्दु-सम्प्रदायमें 'मन्दिर शब्द देवालयके अर्थमें प्रयुक्त होवे है परन्तु ऐसे देवालयके रूपमें मन्दिर जैसी संस्थाको पुष्टिमार्गमें अस्तित्व ही नहीं है. क्योंकि पुष्टिमार्गमें अपने माथे जो प्रभु पधराये जावे हैं वे प्रभुस्वरूप और उनकी सेवा हरेकवु व्यक्तिगतरूपमें वाकी भावनाके अनुसार पधराये जावे हैं. स्वयंके श्रीठाकुरजीकी सेवा पुष्टिमार्गीय जीवको एकमात्र स्वयंको कर्तव्य बन जातो स्वयंको ही धर्माचरण है. पुष्टिमार्गमें सेवा सामुहिक जीवनको विषय नहीं परन्तु व्यक्तिगत जीवनको विषय है. जेसे लोकमें पत्नी अथवा माता को पति अथवा पुत्र की सेवा या वात्सल्य प्रदान करवेको वाको व्यक्तिगत धर्म उत्तरदायित्व और अधिकार होवे है. वा ही तरह जा सेवकके जो सेव्यस्वरूप होवे हैं वा सेव्यस्वरूपकी सेवा वाको व्यक्तिगत धर्म और अधिकार होवे है. सेवा कोई सार्वजनिक कार्य या सार्वजनिक प्रवृत्ति नहीं परन्तु सेवा तो स्वयंके आन्तरिक जीवनके साथ सम्बन्ध रखवेवाली बात होवेसूं स्वयंके जीवनकी स्वयंके घरमें की जावेवाली धर्मरूप प्रवृत्ति है... अतः इतर हवेलीनकी तरह जैसे 'श्रीनाथजीको मन्दिर' शब्द रूढ़ हो गयो होवेसूं प्रयोग कियो जावे है. वस्तुतः तो सामुहिक दर्शन या सेवा जहां की जाती हो ऐसे अन्यमार्गीय सार्वजनिक-देवस्थान जैसो वो मन्दिर नहीं है.

(**पू.पा.गो.श्रीवल्लभरायजी महाराज, सुरत** 'पुष्टिने शीतल छांयडे पृ.सं.१५७-१५८)

(३४) श्रीमहाप्रभुजीने अलग-अलग मन्दिरनकी प्रणाली खड़ी नहीं करी; परन्तु यामें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यकी एक दूरदृष्टि हती... प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय बननो चहिये... कोई मन्दिरके पड़ौसमें एक बहन रहे है वाकुं मन्दिरकी आरतीके घंटानाद सुनाई पड़े हैं. सेवा करवेकुं बैठी भई वो बहन ठाकुरजीके वस्त्र बड़े करके स्नान करावे जा रही हती ऐसेमें आरतीके घंटानाद सुनाई दिये. वो ठाकुरजीकुं वहीं वाही अवस्थामें छोड़के मन्दिरकी तरफ दौड़ गई. थोड़ी देरके बाद लौटके घर आई. अब विचार करो कि या तरहसूं कोई सेवा करे तो वामें आनन्द कभी आ सके है क्या? **यहां तो प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय है.**

(**पू.पा.गो.सुश्रीइन्दिरा बेटीजी, वडोदरा** 'वैष्णवपरिवार अंक.जून ९०)

(३५) तनुजा सेवा और वित्तजा सेवा एक ही व्यक्ति करे तब कहीं जाकर वह मानसीको सिद्ध करती है. केवल तनुजा करली या केवल वित्तजा करली तो अहन्ता-ममता दूर नहीं होगी. ... कैसे? मैं आपको एक उदाहरण देता हूं... जो घरसेवा करते हैं उनकेलिये तो को प्रश्न नहीं है. लेकिन यदि कोई वित्तजा सेवा करेगा तो समझ लीजीये कि उसने मन्दिरमें भेंट दी, मनोरथ किया. उसकी आप रसीद लेंगे... तब आप कहेंगे "मैने सेवा लिखायी है". आप कहते हैं "मैने सेवा लिखायी है" तब अहन्ता कहां दूर हुई? अब आप मेहताजीसे क्या मांगोगे? "ये मेरी रसीद है मेरा प्रसाद लाओ". तो देखीये अहन्ता-ममतामें हम और बंध गये. तो ऐसी सेवा संसारको दूर नहीं करेगी. संसारमें बांधेगी... केवल यदि हम वित्तजा करते हैं तो हमारे अहंकारको बढाते हैं. और अहन्ता दूर न होगी ममता दूर न होगी तो मानसी कैसे सिद्ध होगी? क्योंकि सभी बन्धनका मूल अहन्ता-ममता ही है.

(**पू.पा.गो.श्रीद्वारकेशलालजी महाराज, कामवन-सुरत** सिद्धान्तमुक्तावली प्रवचन भरूच जनवरी २००५)

(३६) पुष्टिमार्ग गुप्त है दिखावाकेलिये तो है ही नहीं, भक्त और भगवान् के बीच आन्तरिक सम्बन्ध दृढ करवेको मार्ग है... दोनोंके संबंध ऐसे होने चहिये कि कोई तीसरेकुं वाकी जानकारी न हो पाये. अपनो अपने भगवान्के

साथ क्या सम्बन्ध है याकुं दूसरे कोई व्यक्तिकुं जतावेकी आवश्यकता ही क्या है? प्रशंसा पावेकुं स्वयंकी महत्ता बढ़ावेकुं? ये तो सभी कुछ बाधक है.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी, अमरेली-कांदीवली** 'पुष्टिनवनीत' पृ.१२)

(३७) चित्त भगवत्प्रेममें परिपूर्ण होइ जाय, पूर्णत: भगवान्में लगि जाय, तन्मय अरु तल्लीन होइ जाय है. तब परासेवा होत है. याकों मानसी सेवा कह्यो जाय है. याके सङ्ग मनुष्यकों शरीरसों हु सेवा करनी चहिये... तनुजा सेवासों शरीरकी शुद्धि होत है. अहन्ता-अहंपनेंको नाश होत है. धनसों करी जाती सेवा 'वित्तजा'सेवा है. वासों ममता-मेरोपेनेंको नाश होत है. अहन्ता अरु ममता एक-दूसरेके सङ्ग जुडे भये रहत हैं तासों तनुजा अरु वित्तजा सेवा एकसङ्ग करनी चहिये यामें प्रधानता तनुजा सेवाकी है. केवल धन दे देवेसों सेवा होत नाहीं है वासों तो (चित्तमें) राजसी वृत्ति होत है.

(**षष्ठगृहाधीश पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी वडोदरा** श्रीमद्भगवद्गीता पुष्टिदर्शन पृ.१२५)

(३८/क) "श्रीमहाप्रभुजी वल्लभाचार्यजीके पुष्टिसम्प्रदायमें दो दीक्षाएं दी जाती हैं. दोनों दीक्षाओंका प्रयोजन और तत्पश्चात् कर्तव्य का भी विचार बहुत आवश्यक है. केवल शिष्येषणासे प्रेरित होकर शिष्य बनानेकेलिये दी जाती दीक्षासे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है. जो भगवत्सेवा करनेकेलिये तैयार नही है उसको कदापि ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनी नहीं चाहिये. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंमें यदि निष्ठावान् है तो उसे केवल नामदीक्षा लेनी चाहिये और अन्याश्रयका त्याग करके श्रीकृष्णका आश्रय दृढ करनेकेलिये प्रयत्नशील होकर नामसेवारत रहना चाहिये. परन्तु ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनेके बाद श्रीकृष्णकी सेवा करनी अनिवार्य है.

श्रीकृष्णकी सेवा भी श्रीमहाप्रभुजीद्वारा दिखलाई गयी रीतिके अनुसार ही हो सकती है. अपने घरमें अपने परिवारके सदस्योंके साथ अपने ही द्रव्यसे भगवत्सेवा करनी चाहिये. किसीको द्रव्य देकर अथवा किसीसे द्रव्य लेकर की जाती सेवा वह भगवत्सेवा तो कदापि नहीं ही है परन्तु श्रीमहाप्रभुजीका

द्रोह होनेसे गुरु-अपराधसे ग्रसित बनाकर आरुढपतित बनाती है और इस भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करती है. आजीविका चलानेकेलिये की जाती व्यावसायिक सेवासे तो चांडालके समान हीन देवलक बन जाते हैं. अतः भगवत्सेवा अपने घरमें अपने द्रव्य और तनसे ही की जा सकती है.

सेवाकी ही तरह भगवत्कथा-कीर्तन भी स्वयं अथवा निष्काम भगवदीयोंके साथ करने चाहिये. व्यावसायिक कथाकारोंको द्रव्य-दक्षिणा देकर अथवा लेकर करायी जाती कथा राखमें घी होमनेके तुल्य है. ऐसी कथा, पारायण, कीर्तन अथवा सप्ताह पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध हैं. अतः सेवा और कथा दोनों द्रव्य देकर अथवा लेकर करनेसे किसी भी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति किसी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति स्वप्नमें भी नहीं हो सकती है. हां, बहिर्मुख अवश्य होते हैं.

(ख) "अमे तो राजना खासा खवास मुक्ति मन न आवे रे" व्रजाधिपका सेवन करनेवाले हम मुक्ति नहीं मांगते हैं फिर भी पुष्टिमार्गी वैष्णव भागवत सप्ताह बैठाकर अपने पितृओंको मोक्षके मार्गपर भेजते हैं! पितृमोक्षार्थ भागवत सप्ताह, कोई एकसो आठ! कोई एक हजार आठ!... अपने पितृ तो गोलोकमें जाते हैं! उनको वापिस मोक्षमें क्यों भेजते हो!... भागवत सप्ताह पूरी हो जानेके बाद माला पहेरामणी (सौराष्ट्रकी एक वैष्णव परम्परा) की जाती है और कहते हैं कि अब गोलोक धाम... अब गोलोक धाममें भेजना है मतलब यह हुवा कि पितृओंको यहां से वहां सिर्फ धक्के हि खिलवाने हैं! हमारा कोई ध्येय ही निश्चित नहीं है!! हमने श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थोंको खोला नहीं है उसका यह दुष्परिणाम है कि जिसे हमारे पूर्वजोंको भुगतना पड़ रहा है.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीपुरुषोत्तमलालजी, जुनागढ,** श्रीयमुनाष्टक प्रवचन राजकोट २००६)

संयुक्तघोषणापत्र : सुप्रिमकोर्ट

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर,

यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ... अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है... सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें "बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु".

हस्ताक्षर कर्ता:

गो शरद अनिरुद्धजी (मांडवी-हालोल)
गो किशोरचन्द्र (मांडवी-जुनागढ)
गो अजयकुमार श्यामसुंदरजी (मद्रास)

गो मनमोहन (मुंबई)
गो श्यामसुन्दर मुरलीधरजी (बोरीवली)
गो हरिराय कृष्णजीवनजी (मुंबई)
नि.ली.गो.श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)
गो वल्लभलाल श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो हरिराय श्रीगोविंदरायजी (पोरबंदर)
नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीषजी श्रीकृष्णजीवनजी (दहिसर)
गो व्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
नि.ली.गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)
गो राजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो विजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो योगेश्वर मथुरेश्वरजी (वडोदरा-सुरत)
गो रघुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
गो देवकीनन्दनाचार्य (गोकुल-अमदावाद)
गो नवनीतलाल श्रीगोविंदलालजी (कामवन-भावनगर)
गो मुरलीमनोहर श्रीव्रजाधीशजी (दहिसर)
नि.ली.गो.श्रीमाधवरायजी श्रीगोकुलनाथजी (मुंबई-नासिक)
गो रमेशकुमार श्रीगोपीनाथजी (मुलुंड-नासिक)
गो कल्याणराय (कन्हैयाबावा (वीरमगाम-अमदावाद)
गो योगेशकुमार (मुंबई)
गो व्रजप्रिय मुरलीधरजी (बोरीवली)
गो नीरजकुमार श्रीमाधवरायजी (मुंबई-नासिक)
गो शरदकुमार (शीलूबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
गो चन्द्रगोपाल (चंदुबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
नि.ली.गो.श्रीनृत्यगोपालजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)

पत्रद्वारा सम्मतिः

नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी श्रीगोविंदरायजी (सुरत)
नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (जामनगर)
पञ्चमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लभविद्यानगर)
नि.ली.गो.श्रीगोविंदलालजी (कोटा)

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी श्रीद्वारिकेशलालजी (मांडवी-हालोल)
गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)
गो.श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)
गो.श्रीविट्ठलनाथजी श्रीव्रजभूषणलालजी (चापासेनी-जूनागढ-जामनगर)
गो.श्रीहरिरायजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)
गो.श्रीव्रजरत्नजी श्रीव्रजभूषणलालजी (नडीयाद-जामनगर)
गो.श्रीनवनीतलालजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जूनागढ-जामनगर)
गो.श्रीबालकृष्णजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जेतपुर-जामनगर)

("**महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यवंशज गोस्वामीओंका संयुक्त-घोषणापत्र**" १९८६ पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्त विवरण पृष्ठ.४९-७८, फोटोकोपी देखें : सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्तप्रकाशन, सन.२००८)

॥ सिद्धान्तवचनावलीके अंश ॥

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिलें तो... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह सेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनो प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता... वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता (गोस्वामी-मुखीया-ट्रस्टी) को वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा

की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हो और भक्त हो ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध: अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल: एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित: श्री ठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध: श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल: सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित: जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पानेके लिये भी भजन (सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी?...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-समाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ़ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंके लिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धतम नरकको पानेवाले सहज आसुरी जीव हैं.

(पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश, हस्ताक्षरोकी फोटोकॉपी देखें: सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्त प्रकाशन, २००८)

सम्मतिमें हस्ताक्षर करनेवाले गोस्वामी महानुभाव :

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी द्वारकेशलालजी (मांडवी-हालोल)
गो.श्रीकिशोरचन्द्रजी पुरुषोत्तमलालजी (जुनागढ़)
गो.श्रीकन्हैयालालजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)
गो.श्रीकृष्णकान्तजी कृष्णचन्द्रजी (इचलकरंजी)
गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)
पंचमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लविद्यानगर)
गो.श्रीगोपिकालंकारजी श्रीवल्लभलालजी (राजकोट-माणावदर)
चतुर्थपीठाधीश गो.श्री.देवकीनन्दनाचार्यजी (गोकुल)
गो.श्रीद्रुमिलकुमार मथुरेश्वरजी (वडोदरा)
गो.श्रीद्वारकेशलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-सुरत)
गो.श्रीनवनीतलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-भावनगर)
गो.श्रीमथुरेशजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)
गो.श्रीमाधवरायजी मुरलीधरजी (वेरावल)
गो.श्रीरघुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
गो.श्रीरघुनाथजी रमेशकुमारजी (मुलुंड-नासिक)
गो.श्रीरवीन्द्रकुमारजी दामोदरलालजी (राजकोट-मांडवी)
गो.श्रीरसिकरायजी द्वारकेशलालजी (उपलेटा-पोरबन्दर)
गो.श्रीराजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीवल्लभलालजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीवल्लभलालजी गिरिधरलालजी (कामवन-विद्यानगर)
गो.श्रीवल्लभलालजी देवकीनन्दनजी (गोकुल-अहमदावाद)
गो.श्रीविजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीविठ्ठलनाथजी लालमणीजी (कोटा-मुंबई)

गो.श्रीव्रजरायजी रणछोडलालजी (अहमदावाद)
गो.श्रीव्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अहमदावाद)
गो.श्रीव्रजेशकुमार चन्द्रगोपालजी (कडी-अहमदावाद)
गो.श्रीशरदकुमार (शीलूबावा) श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)

संयुक्तघोषणापत्र : अमदावाद

आज फेरि वो समय आयो है वासों हु कठिन समय आयो है. वा समय तो अन्यमार्गीय लोग मतनूकुं प्रस्तुत करिके भ्रम उत्पन्न करत हते. परि आज तो अपने सम्प्रदायके ही 'सुज्ञजन' श्रीमहाप्रभुजीकी वाणीको विपरीत अर्थ करि रहे हैं. लोगनूकूं पथभ्रष्ट करि रहे हैं. दैवीजीवनूके सङ्ग घोर अन्याय करि रहे हैं. तासों ही अभी महाप्रभु श्रीवल्लभाधीशके वंशज पुष्टिमार्गीय युवा आचार्यनूने एक 'संवादस्थापकमण्डल'की स्थापना करीके मुम्बईमें... चार दिवस पर्यन्त एक पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभाको आयोजन कियो हतो... सभामें ३५ महानुभाव आचार्य उपस्थित हते २८ गोस्वामी आचार्य महानुभावनूने गो.श्रीश्याम मनोहरजी महाराश्री (किशनगढ-पार्ला)के 'सिद्धान्तवचनावली'के भावानुवादकुं सहमति दीनी हती... पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी व्रजभूषणलालजी महाराजश्री जामनगरवारेनूने पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी महाराजश्रीके सङ्ग विनने करे भावानुवादके मुद्दानूपे चर्चा प्रारम्भ कीनी हती... समयके अभावके कारण चर्चा निर्णयपे पहुंच न सकी. परन्तु वर्तमान(में) कितनेक चर्चास्पद, संशयास्पद मुद्दानूकी स्पष्टता या चर्चामें प्राप्त भयी जो वस्तुत: एक बड़ी सिद्धि है. इतनो ही नहीं परन्तु नीचे बताये मुद्दानूके विश्लेषणमें पूज्य श्रीश्याम मनोहरजीके सङ्ग सहमत होयके पूज्य श्रीहरिरायजीने अपने सम्प्रदायकी उत्तम सेवा कीनी है:

१. पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूपसों ही बिराजे हैं, वे स्वरूप पाछें चाहे गुरुके सेव्य होवें के शिष्य (वैष्णव)के सेव्य होवें दोउ(स्वरूपन्)मेंतें कोउमें हु पुरुषोत्तमपनों न्यूनाधिक होत नाहीं.

२. पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त अनुसार कृष्णसेवा करिवेको स्थान गृह ही होइ सकत है सार्वजनिक (स्थल) नाहीं.

३. पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवाकु धनकी प्राप्तिको साधन बनानो नहीं चहिये.

४. देवलक (=भगवत्सेवाकु धनप्राप्तिको साधन अथवा आजीविकाको साधन बनायवेवारे) व्यक्तिकी सेवा निषिद्ध कक्षाकी होयवेसों (वो) सेवा करवे योग्य नाहीं है.

५. श्रीठाकुरजीके तांई काहु प्रकारके दान-भेंट मांगने अथवा स्वीकारने वो शास्त्रद्वारा निषिद्ध है इतनो ही नाहीं परि लाभ-पूजाके हेतुसों अपने लिये द्रव्य अथवा काहु वस्तुको स्वीकारनो वो शास्त्रकी दृष्टिमें ऋणानुबन्धी दोषकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेसों बन्धनकारी है.

६. पुष्टिमार्गके सिद्धान्तानुसार श्रीठाकुरजीकुं निवेदन करे पदार्थनूको ही समर्पण होइ सकत है अरु समर्पित पदार्थनूको ही भगवद उच्छिष्टरूपमें प्रसाद लेइ सकत हैं श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें आयी भयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें ली नहीं जा सके है क्योंके श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें प्राप्त भये पदार्थ (द्रव्य)सों आयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें पाछी लेवेसों 'दत्तापहार'को पाप लागत है.

७. सेवा तो शास्त्रको विषय है तासों सेवाके सम्बन्धमें शास्त्रसों श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थनूसों ही सर्व निर्णय होइ सकत है अन्य काहु प्रकारसों नाहीं.

(''संयुक्तघोषणापत्र:अमदावाद'', मिति फाल्गुन सुदि.७, श्रीवल्लभाब्द ५१४, दि.११ मार्च १९९२, देखें : पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्तविवरण १९९३)

हस्ताक्षर:

नि.ली.गो श्रीव्रजरायजी-श्रीनटवरगोपालजी महाराज (अहमदाबाद)
पू.पा.गो.श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी महाराज (अहमदाबाद)
च.पी.पू.पा.गो.श्रीदेवकीनन्दनजी (गोकुल)
पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)
पू.पा.गो.श्रीराजेशकुमारजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)
पू.पा.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)
पू.पा.गो.श्रीजयदेवलालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)
पू.पा.गो.श्रीमथुरेशजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)
पू.पा.गो.श्रीकन्हैयालालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)
पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)